



# Preface.

---

I am Jain by birth and love Jain religion as Universal Religion. I was ignorant of its fundamental principles as the people of other religions generally are. Fortunately, I had a chance to see the author of this book and heard his updesb and had a talk with him which gave me much information about my religion. The author is a learned Jain Sadhu belonging to the Svetamber Sthanakwasi Sadhus of the Punjab. He is well versed in the Jain literature belonging to all branches of Jain. Though he is still about 30 years of age, yet his love for learning and teaching the others forced me to request him to write this book for the good of the public which he very kindly did here at my office as he is staying here with his *Guru, great grand Guru & Chelas* for their *Chaturmas* I get this book printed for the public good as a token of gratitude for the obligation the said Sadhu put me under by giving me the necessary information about my religion. The cost price only will be charged which will be given to the Punjab Jain Sabha.

Kasur  
10-14 Devali day }  
Sambat 1971  
mbat 2441 }

Parmanand B. A.  
Pleader,  
Chief Court-PUNJAB



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ नमो समणस्स भगवतो महावीरस्सणं ॥

# ॥ श्री जैन सिद्धान्त ॥

( श्री अनेकान्त सिद्धान्त दर्पण )

॥ प्रथम सर्गः ॥

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! मनुष्यभवको प्राप्त करके तत्त्व विद्याका विचार करना योग्य है, क्योंकि सिद्धान्तसे निर्णय किये बिना कोई भी आत्मा पूर्ण दर्शनाख्द व चारित्राख्द नहीं हो सक्ता है । सिद्धान्त शब्दका अर्थ ही वही है, जो सर्व प्रमाणोंद्वारा सिद्ध हो चुका हो, अपितु फिर वह सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य होता है । तथा सिद्धान्त शब्द पूर्ण सम्यक् दर्शनका ही वाचक है, इसी वास्ते उमास्वातिजी तत्त्वार्थसूत्रकी आदिमें मुक्ति मार्गका वर्णन करते हुए यह सूत्र देने हैं:-



गुणैः रहितस्य मोक्षः कर्मक्षयो नास्ति अमोक्षस्य कर्मक्षयरहितस्य निर्वाणं मुक्तिसुखप्राप्तिर्नास्ति ॥

भावार्थः—उक्त सूत्रमें शृंखलावद्ध लेख हैं जैसे कि सम्यक् दर्शनके बिना सम्यग् ज्ञान नहीं, सम्यक् ज्ञानके बिना सम्यक् चारित्र नहीं, सम्यक् चारित्रके बिना सकल गुण नहीं, गुणोंके बिना मोक्ष नहीं, मोक्षके बिना पूर्ण सुख नहीं अर्थात् आत्मिक आनंद नहीं ॥

सो प्रिय बंधुओ ! सम्यक् दर्शन सम्यक् सिद्धान्तका ही नाम है, क्योंकि सिद्धान्तके जाने बिना कोई भी आत्मा आत्मिक गुणोंमें प्रवेश नहीं कर सकता; अपितु सम्यक् दर्शन अर्हन् देवने जो प्रतिपादन किया है वही जीवोंको कल्याणरूप है । सो अर्हत् देवके कथन किये हुए पदार्थको माननेसे सम्यक् दर्शन होता है, सम्यक् दर्शनको अर्हत् मत कहो वा जैन दर्शन कहो किन्तु दोनों शब्दोंका एक ही अर्थ है ॥

प्रश्नः—जिन शब्द किस प्रकार बनता है, फिर जैन शब्द किस अर्थमें व्यवहृत होता है ?

उत्तरः—‘जि’ जये धातु को नक् प्रत्ययान्त होकर जिन शब्द बन जाता है । यथा ‘जि’ जये धातु जय अर्थमें व्यवहृत है तद



द्वेषादि शत्रुओंको जीत लिया है वही जिन है ॥ फिर, देवता  
॥ शा० अ० २ पा० ४ । सू० २०६ ॥

प्रथमान्तात् साऽस्यदेवतेत्यस्मिन्नर्थे अ-  
णादयो ज्ञवन्ति ॥ इत्यण् ॥ आर्हतः ॥ एवं जैनः  
सौगतः शैवः वैष्णवः इत्यादि ॥

भाषार्थः—इस तद्धितके सूत्रका यह आशय है कि प्रथमा-  
न्तसे देवार्थमें अणादि प्रत्यय होजाते हैं यथा अर्हन् देवता  
अस्य आर्हतः । जिनो देवताऽस्य जैनः ( आरैचोऽश्वादेः । शा०  
अ० २ । ३ । ८४ )

इस सूत्रसे आदि अच्को आ-ऐ-औ-आर् येह हो जाते  
हैं ॥ तब यह अर्थ हुआ कि जिन है जिनका देव वही हैं जैन  
अथवा ( जिनं वेत्तीति जैनः ) अर्थात् जो जिनके  
स्वरूपको जानता है वही जैन है ॥ तथा जिनानां राजः  
जिनराजः यह पठितत्पुरुष समास है । इससे यह सिद्ध  
हुआ कि जो सामान्य जिन हैं उनका जो राजा  
है वही जिनराज है अर्थात् तीर्थंकर देव ॥ इसी प्रकार  
जिनेन्द्र शब्द भी सिद्ध होता है ॥ सो जो श्री जिनेन्द्र देवने





रूपादि वस्तु द्रव्यात् सर्वथा अतिरिक्तं अपि नास्ति द्रव्ये एव  
 रूपादि गुणा लभ्यन्ते इत्यर्थः ॥ गुणा हि एक द्रव्याश्रिताः एक-  
 स्मिन् द्रव्ये आधारभूते आधेयत्वेनाश्रिता एक द्रव्याश्रितास्ते  
 गुणा लभ्यन्ते इत्यनेन ये केचिद् द्रव्यं एव इच्छन्ति तद्रव्यस्ति  
 रिक्तान् रूपादीन् इच्छन्ति तेषां मतं निराकृतं तस्माद् रूपादीनां  
 गुणानां मध्येभ्यो भेदोप्यस्ति तु पुनः पर्यायाणां नव पुरातनादि  
 रूपाणां भावानां एतल्लक्षणं ज्ञेयं एतद् लक्षणं किं पर्याया हि उभ-  
 याश्रिता भवेयुः उभयोर्द्रव्यगुणयोराश्रिताः उभयाश्रिताः द्रव्येऽ-  
 नवीन पर्यायाः नाम्ना आकृत्या च भवंति गुणेऽपि नव पुराणादि  
 पर्यायाः प्रत्यक्षं दृश्यन्ते एव ॥

भाषार्थः—उक्त सूत्रमे सह दर्शन है कि द्रव्यके आश्रित  
 गुण होते हैं, जैसे अग्निका प्रकाश वा उष्ण गुण हैं । अग्नि द्र-  
 व्य है तथा सूर्य द्रव्य प्रकाश गुण, जीव द्रव्य ज्ञान गुण, किन्तु  
 नित्य गुणका आत्मासे अनादि अनंत सन्दर्भ है । यथा श्री  
 आचारार्ये—

“ जे आया से विनाया जे विनाया से  
 आया जेणविज्जाणइ से आया ”

इति वचनात् । अर्थात् जो आना है वही ज्ञान है, जो





कीगानन्त भेदगुक्तानि भवन्ति नानि श्रीणि द्रव्याणि कानि  
कालः समयादिग्ननः अतिमानागतापेक्षया पुराणा अपि  
अनन्ताः ॥

भावार्थः—धर्म अधर्म आकाश यह तीन ही द्रव्य असंख्यात  
प्रदेशरूप एकेक हैं अपितु आकाश द्रव्य लोकालोक अपेक्षा अनंत  
द्रव्य है, यह द्रव्य पूर्ण लोके व्याप्त है, अखंड रूप है, निज  
गुणापेक्षा और कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य यह तीन ही अनंत  
हैं; क्योंकि कालद्रव्य इस लिये अनंत है कि पुद्गलकी अनंत  
पर्याय कालापेक्षा करके ही सद्रूप है तथा अनन्ते कालचक्र भूत  
भविष्यत काल अपेक्षा भी कालद्रव्य अनंत है और समय अस्थिर  
रूपमें है । फिर असंख्यात शुद्ध प्रदेशरूप जीव द्रव्य है अर्थात्  
असंख्यात शुद्ध ज्ञानमय जो आत्मप्रदेश हैं वे ही जीवरूप हैं  
इसी प्रकार अनंत आत्मा है और उनके भी प्रदेश पूर्ववत् ही हैं,  
अपितु निज गुणापेक्षा शुद्धरूप हैं । कर्म मलापेक्षा व्यवहार नयके  
मतमें शुद्धआत्मा अशुद्धआत्मा इस प्रकारसे आत्म द्रव्यके  
दो भेद हैं अपि तु संग्रह नयके मतमें जीव  
द्रव्य एक ही है, जैसे श्री स्थानांग सूत्रके प्रथम स्थानमें यह  
सूत्र है कि ( एगे आया ) अर्थात् संग्रह नयके में आत्म  
द्रव्य एक ही है क्योंकि अनंत गुण





यदि फिर भी उस कलशमें मत्संड्यादि द्रव्य प्रविष्ट करें तो प्रवेश हो जाते हैं उसी प्रकार आकाश द्रव्यमें जीव द्रव्य अजीव ठहरे हुए हैं। अपितु जैसे भूमिकामें नागदंत ( कीला ) को स्थान प्राप्त हो जाता है तद्वत् ही आकाश प्रदेशों में अनंत प्रदेशी स्कंध स्थिति करते हैं क्योंकि आकाश द्रव्यका लक्षण ही अवकाश रूप है।

अथ काल व जीवका लक्षण कहते हैं:—

वर्तणा लक्ष्णो कालो जीवो ज्वओग  
लक्ष्णो नाणेणं दंसणेणंच सुहेणय दुहेणय ॥  
उत्त० अ० २७ गाथा १० ॥

वृत्ति—वर्तते अनवच्छिन्नत्वेन निरन्तरं भवति इति वर्त्त-  
ना सा वर्त्तना एव लक्षणं लिङ्गं यस्येति वर्त्तनालक्षणः काल  
उच्यते तथा उपयोगो मतिज्ञानादिकः स एव लक्षणं यत् स  
उपयोगलक्षणो जीव उच्यते यतो हि ज्ञानादिभिरेव जीवो  
लक्ष्यते उक्त लक्षणत्वात् पुनर्विशेष लक्षणमाह ज्ञानेन विशेषाव-  
बोधेन च पुनर्दर्शनेन सामान्यावबोधरूपेण च पुनः मुखेन च पु-  
नर्मुखेन च ज्ञायते स जीव उच्यते ॥ १० ॥



( १४ )

भाषार्थः—समय का वर्तना लक्षण है इसी परते समय समय पर्याय उत्पन्न होता है, जेमेकि उपचारक नगके समय जीवकी व्यवस्थाका कारणभूत काल द्रव्य ही है। यथा—माल ? यरा २ हृद् २ भयरा उत्पन्न ? नाश २ ध्रुव ३ यह तीनों ही व्यवस्थाका कर्ता काल द्रव्य है और जो कुछ समय २ उत्पत्ति वा नाश पदार्थोंका है वे सर्व काल द्रव्यके ही स्वभावसे हैं अपितु द्रव्योंका उत्पन्न वा नाश यह उपचारक नयका वचन है किन्तु द्रव्यार्थिक नयापेक्षा सर्व द्रव्य नित्यरूप हैं । और पर्यायोंका कर्ता काल द्रव्य है । जैसे सुवर्ण द्रव्यके नाना प्रकारके आभूषणादि बनते हैं; फिर उनही आभूषणादिको ढाल कर अन्य मुद्रादि बनाये जाते हैं; इसी प्रकार जो जो द्रव्यका पर्याय परिवर्तन होता है उसका कर्ता काल द्रव्य ही है । इसी वास्ते सूत्रमें लिखा है 'वृत्तणा लक्षणा कालो' अर्थात् कालका लक्षण वर्तना ही है सो कालके परिवर्तन से ही जीव द्रव्य अजीव द्रव्यका पर्याय उत्पन्न हो जाता है और जीव द्रव्यका उपयोगरूप लक्षण है सो उपयोग ज्ञान दर्शनमें ही होता है अर्थात् जीव द्रव्यका लक्षण ज्ञान दर्शनमें उपयोगरूप है सो यह तो सामान्य प्रकारसे सर्व जीव द्रव्यमें यह लक्षण सनन विद्यमान है । अपितु विशेष लक्षण यह है कि सुख वा दुःखका अनुभव

करना क्योंकि सुख दुःखका अनुभव जीव द्रव्यको ही है न तु अन्य द्रव्यको ॥

पुनः सूत्र इमं कथनञ्चो इस प्रकारसे लिखने हैं ।

नाणं च दंस्तणं चैव चरित्तं च तवो तद्वा  
वीरियं उवओगोय एयं जीवस्त लक्खणं ॥  
उ० सू० अ० १७ गा० ११ ॥

वृत्ति—ज्ञानं ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं च पुनर्दृश्यते अनेनेति दर्शनं च पुनश्चरित्रं क्रियाचेष्टादिकं तथा तपो द्वादशविधं तथा वीर्यं वीर्यन्तराय क्षयोपममात्र उत्तरार्धं सामर्थ्यं पुनस्तपयोगो ज्ञानादिषु एकग्रत्वं एतत् सर्वं जीवस्य लक्षणं ॥ ११ ॥

भावार्थः—ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य, तथा उपयोग यही जीवके लक्षण है, क्योंकि ज्ञान दर्शनतप आत्मा अनंत शक्ति संपन्न है । पुनः चरित्र और तप यह भी आत्माके साध्य धर्म हैं क्योंकि आत्मा ही तपादि करके पुत्र हो सकता है, न तु अनात्मा ।

प्रश्न—जब आत्मा द्रव्य अनंत वीर्य करके पुत्र है तब सिलात्मा भी अनंत वीर्य करके पुत्र हुए तो फिर उनका वीर्य सकलजनों के लिये मान्य होता है ?

जब जैन लोग कथन युक्त से मान्यता प्राप्त करते हैं तो वे मान्यता प्राप्त करने के लिये युक्त देते हैं। यही कारण है कि वे मान्यता प्राप्त करने के लिये युक्त देते हैं।

पुनः मान्यता प्राप्त करने के लिये वे मान्यता प्राप्त करने के लिये युक्त देते हैं। यही कारण है कि वे मान्यता प्राप्त करने के लिये युक्त देते हैं।

पूर्वपक्षः—जिस समय आत्मा सिद्ध गति को प्राप्त होता है तब ही अकृतवीर्य हो जाता है सो इस कथनसे सिद्ध प सादि ही सिद्ध हुआ। जब ऐसे हैं तब जैन मतकी मोक्ष अनादि न रही, अपितु सादि पद युक्त सिद्ध हुई ॥

उत्तरपक्षः—हे भव्य ! यह आपका कथन युक्ति वा सिद्धान्त बाधित है क्योंकि जैन मतका नाम अनेकान्त मत है सो जब जैन मत संसारको अनादि मानता है तो भला मोक्षपद सादि युक्त कैसे मानेगा ? अर्थात् कदापि नहीं, क्योंकि संसार अनादि अनंत है उसी ही प्रकार मोक्षपद भी अनादि अनंत है, अपितु सिद्धापेक्षा सूत्रकार ऐसे कहते हैं। यथा—

एगत्तेणयसाइया अपज्जवसियाविय ।

पुहत्तेण अणार्इया अपज्जवसियाविय ॥

उत्त० अ० ३६ गाथा ६७ ॥

वृत्ति—ते सिद्धा एकत्वेन एकस्य कस्यचित् नाम ग्रहणापेक्षया सादिकाः अमुको मुनिस्तदा सिद्धः इत्यादि सहिताः सिद्धाः भवन्ति च पुनस्ते सिद्धाः अपर्यवसिताः अन्तरहिताः मोक्षगमनादनन्तरं अत्रागमनाभावात् अन्तरहिताः ते सिद्धाः पृथक्त्वेन बहुः केन सामस्त्यापेक्षया अनादयो अनन्ताश्च ॥

भावार्थः—एक सिद्ध अपेक्षा सादि अनंत है और बहुतोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, अर्थात् जिस समय कोई जीव मोक्षगत हुआ उस समयकी अपेक्षा सादि है अपुनरावृत्तिकी अपेक्षा अनंत है, फिर बहुत सिद्धोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, क्योंकि कालचक्र अनादि अनंत होनेसे तथा जैसे चेतनशक्ति अनादि है वैसे ही जड़शक्ति भी अनादि है अपितु जड़शक्तिकी अपेक्षा चेतनशक्ति रूप शब्द व्यवहृत है, ऐसे ही जड़शक्ति चेतनशक्तिकी अपेक्षा सिद्ध है । इसी प्रकार संसार अपेक्षा सिद्ध पद है और सिद्धपद अपेक्षा संसारपद है, किन्तु यह दोनों अनादि अनंत है ॥



जैसेकि कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रक्ष, यह आठ ही स्पर्श इत्यादि सर्व पुद्गल द्रव्यके लक्षण हैं, क्योंकि पुद्गल द्रव्य एक है उसके वर्ण गंध रस स्पर्श यह सर्व लक्षण हैं, इन्हींके द्वारा पुद्गल द्रव्यकी अस्तित्व है ॥

अथ पुद्गल द्रव्यके पर्यायका वर्णन करते हैं:—

एरात्तं च पुहत्तं च संखा संठाण मेवय ।

संजोगाय विजागाय पज्जावाणंतु लक्खणं ॥

उत्त० अ० २७ गाथा १३ ॥

वृत्ति—एतत् पर्यायाणां लक्षणं एतत् किं एज्जत्वं भिन्नेष्वपि यरमाणादिषु यत् एकोयं इति बुद्ध्या घटोयं इति प्रतीति हेतुः च पुनः पृथक्त्वं अयं अस्मात् पृथक् घटः पटात् भिन्नः पटो घटा-  
भिन्नः इति प्रतीति हेतुः संख्या एको द्वौ बहुव इत्यादि प्रतीति हेतुः च पुनः संस्थानं एव वस्तूनां संस्थानं आकारश्चतुरक्ष वस्तु-  
लतित्वादि प्रतीति हेतुः च पुनः संयोगा अयं अङ्गुल्याः संयोग इत्यादि व्युपदेशहेतवो विभागा अयं अतो विभक्त इति बुद्धि हेतवः एतत्पर्यायाणां लक्षणं ज्ञेयं संयोगा विभागा बहुवचनात् नव पुराणत्वाद्यवस्था ज्ञेयाः लक्षणं त्वसाधारण रूप गुणानां लक्षणं रूपादि प्रतीतत्वान्नोक्तं ॥



पदार्थ छोड़ने में आते हैं वह सब परिणामिक द्रव्य हैं, इस लिये उन्हें पर्याय कहते हैं ॥ तथा बहुतसे अनभिज्ञ लोगोंने पुद्गलद्रव्यके स्वरूपको न जानते हुआने ईश्वरकृत जगत् कल्पन कर लिया है अपितु उन लोगोंकी कल्पना युक्तिवाधित ही है । जैसे कि जब परमात्मामें सृष्टिकर्तृत्व गुण है, तब परलय कर्तृत्व गुण असंभव हो जायगा, क्योंकि एक पदार्थमें पक्ष प्रतिपक्ष रूप युग पत् समूह ठहरना न्याय विरुद्ध है । जैसे कि अग्निमें उष्ण वा प्रकाश गुण सदैव कालसे हैं वैसे ही शीत वा अन्धकार यह गुण अग्निमें सर्वथा असंभव हैं, इसी प्रकार ईश्वरमें भी नित्य गुण एक ही होना चाहिये परस्पर विरुद्ध होने के कारणसे ॥

यदि यह कहोगे कि जैसे पुद्गलकी समय २ पर्याय परिवर्तनाके कारणसे पुद्गल द्रव्य दो गुण भी रखने समर्थ है, इसी प्रकार ईश्वरमें भी दो गुण ठहर सक्ते हैं, सो यह भी कथन समीचीन नहीं है क्योंकि पुद्गल द्रव्यका जब पर्याय परिवर्तन होता है तब उसमें सादि सान्तपद कहा जाता है । फिर प्रथम पर्यायकी जो संज्ञा (नाम) है उसका नाश जो नूतन संज्ञा है उसकी उत्पत्ति हो जाती है तो क्या ईश्वरकी भी यही दशा है ? तथा जब परलय हुई फिर आकाशका भी अभाव हो गया तब परमात्मा सर्व व्यापक रहा किम्बा न रहा । यदि रहा तब परलय न हुई,



ਵਰਗਿਕ ਲਾਗਤ ਕਰਕੇ ਹੀ ਇਹ ਦਾਅਵਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਡੇ ਪਾਸ  
ਲਾਗਤ ਦੇ ਨਿਯਮਾਂ ਵਜੋਂ ਲਾਗਤ ਨੂੰ ਮੰਨ ਲੈ।

गति परमा-माही भी परलय मानी जाये नव ईश्वर ही  
संदिग्ध हो गया तो भला मष्टिकर्तृ न गण केने मिट्ट होगा ?  
मो इग विषयको मे यहाँपर उपाहिमे विम्वारपूरित छिराना  
नही चाहता हूं कि मैं मिहान्तको ही छिरा रहा हूं न तु संडन  
मंडन ॥

अथ नव तरङ्गा विवरणं किञ्चित् मात्र लिखता हः—

जीवाजीवाय वंधोय पुएणं पात्रा सवोतहा ।

संवरो निजारा मोक्खो संतेएतहिया नव ॥

उत्त० अ० २८ गाथा १४ ॥

वृत्ति-जीवाश्चेतनालक्षणाः अजीवा धर्माधर्माकाश-  
कालपुद्गलरूपाः वन्यो जीव कर्मणोः संश्लेषः पुण्यं शुभप्रकृति  
रूपं पापं अशुभं मिथ्यात्वादि आस्रवः कर्मबंधहेतुः हिंसा  
मृषाऽदत्तमैथुनपरिग्रहरूपः तथा संवराः सामिति गुप्त्यादि-  
भिरास्रवद्वारनिरोधः निर्जरा तपसा पूर्वार्जितानां कर्मणां परि-  
श्रान्तं मोक्षः सकलकर्मक्षयात् आत्मस्वरूपेण आत्मनोऽव-

स्थानं एते नव संख्याकास्तध्याः अवितंधाः भावाः संति इति  
सम्बन्धः नव संख्यात्वं हि एतेषां भावानां मध्यमापेक्षं जघन्यतो  
हि जीवाजीवयोरेव बन्धादीनां अन्तर्भावात् द्वयोरेव संख्यास्ति  
एतकृष्टतस्तु तेषां उत्तरोत्तर भेदविवक्षया अनन्तत्वं स्यात् ॥

भावार्थः—तत्त्व नव ही है जैसे कि जीवतत्त्व १ अजीवतत्त्व  
२ पुण्यतत्त्व ३ पापतत्त्व ४ आस्रवतत्त्व ५ संवरतत्त्व ६ निर्ज-  
रातत्त्व ७ बन्धतत्त्व ८ मोक्षतत्त्व ९ । सो जीवतत्त्व ही इन  
तत्त्वोंका ज्ञाता है न तु अन्य ॥ जीवतत्त्वमे चेतनशक्ति इस प्रकार  
अभिन्न भावसे विराजमान है कि जैसे सूर्यमें प्रकाश मत्संधीमें  
मधुरभाव ॥

अजीवनत्त्वमें जडशक्ति भी प्राग्वत् ही विद्यमान है किन्तु  
वट शून्यरूप शक्ति है ॥ जैसे वहुतसे कारिन गाना भी गाते हैं  
किन्तु स्वयम् उस गीतके ज्ञानशून्य ही हैं ॥

पुण्यतत्त्व जीवको पृथ्वी आहारके समान सुखरूप है जैसे  
कि रोगीको पृथ्वीआहारसे नीरोगता होती है, और रोग नष्ट हो  
जाता है । इसी प्रकार आत्मामें जब शुभ पुण्यरूप परमाणु  
उदय होते हैं उस समय पापरूप अशुभ परमाणु आत्मामें उ-  
दयमें न्यून होते हैं किन्तु सर्वथा पापरूप परमाणु आत्मामें



बंद किया जावे तब नूतन जलका आना बंद होजाता है; इसी प्रकार जो जो आत्मके मार्ग हैं जब वह बंध हो गये तब नूतन कर्म आने भी बंद हुए क्योंकि शुद्धात्मा आत्मवरहित स-म्बररूप है ॥

निर्जरातत्त्व उसको कहते हैं जब संवर करके कर्मोंके आ-नेके मार्ग बंद किए जावें फिर पूर्व कर्म जो हैं उनको तपादि द्वारा शुष्क करना कर्मोंसे आत्माको रहित करना उसकाही नाम निर्जरा है ॥ जैसे तड़ागके जलादिको दूर करना तथा मंदिरके द्वारादिके मार्गसे रजादिका निकासना अथवा नावाके जलको नावासे बाहिर करना ॥ इसी प्रकार आत्मासे कर्मोंका भिन्न करना उसका नाम निर्जरा है ॥ तप द्वादन प्रकारका भिन्न हुआतुमार है ।

अनशनावमौदर्यं व्रत्तिपरित्यक्तह्यानरत्तप-  
रित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः॥  
तत्त्वार्थ सूत्र अ० ७ सू० १ए ॥-

अर्थ:-अनशन १ उनींदरी २ भिक्षाचरी ३ रत्नगरित्याग  
४ विविक्त शय्यासन ५ कायक्लेश ६ यह पद प्रचारसे बाह्य  
तप हैं ॥ तथा-



जाता है १ दुग्धसे घृत भिन्न होता है २ सुवर्णसे रज पृथक् हो जाती है ३ इसी प्रकार जीव कर्मोंसे अलग हो जाता है अपितु फिर कर्मोंसे स्पर्शमान नहीं होता जैसे तिलोंसे तैल पृथक् हो कर फिर वह तैल तिलरूप नहीं बनता ऐसे ही घृत सुवर्ण इत्यादि ॥ इसी प्रकार जीव द्रव्य जब कर्मोंसे मुक्त हो गया फिर उसका कर्मोंसे स्पर्श नहीं होता, किन्तु फिर वह सादि अनंत पदवाला हो जाता है ॥ सो यह नव तत्त्व पदार्थ हैं ॥ तथा च जीवाजीवान्वयवन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ तत्त्वार्थ के इन सूत्रमें सप्त तत्त्व सिद्ध हैं, जैसे कि जीवनतत्त्व १ अजीवतत्त्व २ आत्मदतत्त्व ३ दन्धतत्त्व ४ सम्वरतत्त्व ५ निर्जरान्तत्त्व ६ मोक्षतत्त्व ७ ॥

किन्तु पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व, यह दोनों ही तत्त्व आत्मवत्तत्त्व के ही अन्तरभूत हैं, क्योंकि वागवत्तत्त्व पुण्य पाप यह दोनों ही आत्मतत्त्वमें आते हैं अपितु पुण्य शुभ प्रवृत्तिरूप आत्मवत्तत्त्व है, पाप अशुभ प्रवृत्तिरूप आत्मवत्तत्त्व है । कर्मोंका बंध जीवाजीवके एकात्म होने पर ही निर्भर है क्योंकि जीवाजीवके एकात्म होने पर ही योगोपपत्ति है, सो योगोंके ही बन्धोका बंध है और पुण्य पापसे ही आत्मवत्तत्त्व अपितु पुण्य पापना जो आत्मगतम्तत्त्व है, वही



स्वःकाल ३ स्वःभाव ४ । उसका अस्ति स्वभाव है, जैसेकि चेतनका तीन कालमें ज्ञानस्वरूप रहना, और पुद्गल द्रव्यमें अनादि कालसे जड़ता इत्यादि ॥

सो इसी प्रकार वस्तु द्रव्यके प्रमेय, अगुणलघु, प्रदेश, चेतन, अचेतन, मूर्ति, अमूर्ति इत्यादि यह दश सामान्य गुण एक एक द्रव्यमें आठ २ सामान्य गुण हैं जैसेकि जीव द्रव्यमें अचेतनता और मूर्तिभाव नहीं है; और पुद्गल द्रव्यमें चेतनता अमूर्तिभाव नहीं है ॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्यमें चेतनता मूर्तिभाव नहीं है ॥ इसी प्रकार दो दो गुण वर्जके रूप आठ आठ गुण सर्व द्रव्योंमें हैं, और विशेष पोटल गुण हैं जैसेकि ज्ञान, दर्शन, सुख, दीर्घाणि, स्पर्श, रस, गंध वर्णाः, गतिहेतुत्वं, स्थितिहेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वम्, वर्तनाहेतुत्वं, चेतनहेतुत्वं, अचेतनहेतुत्वं, मूर्तित्वं, अमूर्तित्वं; द्रव्याणां विशेषगुणाः पोटल विशेषगुणहेतु जीव पुद्गलयोः पालिका ॥ जीवस्य ज्ञान दर्शन सुख दीर्घाणि चेतनत्वममूर्तिमिति पद् ॥ पुद्गलस्य स्पर्श रस गंध वर्णाः मूर्तिव्यवचेतनमिति पद् ॥ इत्येतां धर्मधर्मासद्व्यवस्थानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः वर्तन्ते गतिहेतुममूर्तिव्यवस्थानादयेते त्रयो गुणाः । अधर्म इत्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तिव्यवस्थानादिति । आकाश इत्ये अचेतन





फिर स्वभाव इस प्रकारसे जानने चाहिये:—

यथा—स्वभावाः कथ्यन्ते । अस्तिस्वभावः नास्तिस्वभावः  
नित्य स्वभावः अनित्य स्वभावः; एक स्वभावः अनेक स्वभावः भेद  
स्वभावः अभेदस्वभावः भव्य स्वभावः अभव्य स्वभावः परम स्वभावः  
द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः चेतन स्वभावः अचेतन स्व-  
भावः मूर्त्त स्वभावः अमूर्त्त स्वभावः एकप्रदेशस्वभावः अनेक  
प्रदेशस्वभावः विभावस्वभावः शुद्ध स्वभावः अशुद्ध स्वभावः  
उपचरित स्वभावः एते द्रव्याणां दशविशेषस्वभावाः । जीव  
पुद्गलयोरेकविंशतिः चेतन स्वभावः मूर्त्त स्वभावः विभाव स्व-  
भावः एकप्रदेशस्वभावः शुद्ध स्वभाव एतैः पञ्चाभिः स्वभावैर्वि-  
नाधर्मादित्रयाणां षोडशस्वभावाः संति ॥ तत्र बहु प्रदेशं विना  
कालस्य पञ्चदश स्वभावाः एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयो-  
र्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥

अर्थः—जो तीन कालमें विद्यमान पदार्थ हैं और अपने  
द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करके अस्तिरूप हैं तिनका नाम अस्ति  
स्वभाव है । और जो परगुण करके नास्तिरूप है सो नास्ति  
स्वभाव है । जैसेकि घट अपने गुण करके अस्ति स्वभाववाला  
है और पट अपेक्षा घट नास्तिरूप है ऐसे ही पट; क्योंकि घट



है उसका नाम अभव्य स्वभाव है ॥ १० ॥ जो गुणोंमें ही विराजमान हैं अर्थात् जो निज भावोंद्वारा निज सत्तामें स्थिति करता है उसका नाम परम स्वभाव है ॥ ११ ॥

यह तो ११ प्रकारके सामान्य स्वभाव हैं। विशेष भावोंका अर्थ लिखता हूं। जो चेतना लक्षण करके युक्त है सुखदुःखका अनुभव करता है, ज्ञाता है, सो चेतन स्वभाव है ॥ १ ॥ जिसमें उक्त शक्तियें नहीं हैं शून्य रूप है उसका नाम अचेतन स्वभाव है ॥ २ ॥ और जिसमें रूप रस गंध स्पर्श है उसका ही नाम मूर्तिमान् है, क्योंकि मूर्तिमान् पदार्थ रूपादिकरके युक्त होता है ॥ ३ ॥ जिसमें रूपरसगंधस्पर्श न होवे उसका नाम अमूर्तिमान् है जैसे जीव ॥ ४ ॥ जैसे परमाणु पुद्गल आकाशादिकके एक प्रदेशमें ठहरता है सो एक प्रदेश स्वभाव है अर्थात् स्कंध देश प्रदेश परमाणु पुद्गल इस प्रकारसे पुद्गलास्तिकायके चार भेद किए हैं ॥ ५ ॥ जो धर्मास्ति आदिकाय हैं वह अनेक प्रदेशी कही जाती है तिनका नाम अनेक प्रदेशी स्वभाव है ॥ ६ ॥ जो रूपसे रूपान्तर हो जावे जैसे पुद्गल द्रव्यके भेद है उसका नाम विभाव स्वभाव है ॥ ७ ॥

और जो अपने अनादि कालसे शुद्ध स्वभावमें पदार्थ

ठहरे हुए हैं जैसे षट् द्रव्य क्योंकि कोई भी द्रव्य अपने स्वभा-  
 वको नहीं छोड़ता है और नहीं किसीको अपना गुण देता है।  
 अपने गुणों अपेक्षा वह शुद्ध स्वभाववाले है तथा जैसे सिद्ध॥८॥  
 जो शुद्ध स्वभावमें न रहे पर गुण अपेक्षा सो अशुद्ध स्वभाव है  
 जैसे कर्मयुक्त जीव ॥ ९ ॥ उपचरित स्वभावके दो भेद हैं।  
 जैसे जीवको मूर्तिमान् कहना सो कर्मोंकी अपेक्षा करके उपच-  
 रित स्वभावके मतसे जीवको मूर्तिमान् कह सक्ते हैं अपितु जीव  
 अमूर्तिमान् पदार्थ है क्योंकि शरीरका धारण करना कर्मोंसे  
 सो शरीरधारी मूर्तिमान् अवश्य होता है तथा जीवको जड़-  
 बुद्धि युक्त कहना सो भी कर्मोंकी अपेक्षा है, इसका नाम  
 उपचरित स्वभाव है ॥ द्वितीय। सिद्धोंको सर्वदर्शी मानना वा  
 सर्वज्ञ अनंत शक्ति युक्त कहना सो निज गुणापेक्षा कर्मोंसे रहित  
 होनेके कारणसे है यह भी उपचरित स्वभाव ही है ॥ १० ॥  
 इस प्रकार अनेकान्त मतमें परस्परापेक्षा २? स्वभाव हुए ॥  
 उक्त स्वभावोंमेंसे जीव पुद्गलके द्रव्यार्थिक नयापेक्षा और पर्याया-  
 र्थिक नयापेक्षा २? स्वभाव हैं जैसेकि—चेतन स्वभाव ? मूर्त्ति  
 स्वभाव २ विभाव स्वभाव ३ एक प्रदेश स्वभाव ४ अशुद्ध  
 स्वभाव ५ द्वा पांचोंके बिना अर्थादि तीन द्रव्योंके गोचर स्व-

( १५ )

भाव हैं। और बहु प्रदेश विना कालके १५ स्वभाव हैं, सो यह सर्व स्वभाव वा द्रव्योंका वर्णन प्रमाण द्वारा साधित है ॥

प्रश्न—जैन मतमें प्रमाण कितने माने हैं ?

उत्तर—चार ॥

पूर्वपक्षः—सूत्रोक्त प्रमाण सह चार प्रमाणोंका स्वरूप दिखलाईए ॥

उत्तरपक्षः—हे भव्य इसका स्वरूप द्वितीय सर्गमें सूत्रपाठयुक्त लिखना हूं सो पाठिए ॥

। प्रथम सर्ग समाप्त ।

## ॥ द्वितीय सर्गः ॥

॥ अथ प्रमाण विवर्ण ॥

मूलसूत्रम् ॥ सेकिंतं जीव गुणप्पमाणे १  
 तिविहे पण्णते तं. नाणगुणप्पमाणे दंसणगुणप्प  
 माणे चरित्तगुणप्पमाणे सेकिंतं नाणगुणप्पमाणे २  
 चउविहे पं.तं. पच्चक्खे अणुमाणे उवमे आगमे॥

भावार्थः—श्री गौतमप्रभुजी श्री भगवान्मे प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् वह जीव गुण प्रमाण कौनसा है ? क्योंकि प्रमाण उमे कहते हैं जिसके द्वारा वस्तुके स्वरूपको जाना जाये । तब श्री भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! जीव गुणप्रमाण तीन प्रकारसे कथन किया गया है जैसे कि—ज्ञान गुण प्रमाण १ दर्शन गुण प्रमाण २ चारित्र गुण प्रमाण ३॥ फिर श्री गौतमजीने प्रश्न किया कि हे भगवन ज्ञान गुण प्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन किया गया है ? भगवान्ने फिर उत्तर दिया कि—हे गौतम ! ज्ञान गुण प्रमाण चार प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे

कि-प्रत्यक्ष प्रमाण १ अनुमान प्रमाण २ उपमान प्रमाण ३ आ-  
गम प्रमाण ( शास्त्र प्रमाण ) ४ ॥

मूल॥ सेकितं पञ्चक्खे २ दुविहे पं. तं. इंदिय  
पञ्चक्खे नोइंदिय पञ्चक्खे सेकितं इंदिय पञ्चक्खे २  
पंचविहे पं. तं. सोइंदिये पञ्चक्खे चक्खुइंदिय प-  
ञ्चक्खे घाणिंदिय पञ्चक्खे जिह्मिंदिय पञ्चक्खे  
फासिंदिय पञ्चक्खे सेतं इंदिय पञ्चक्खे ॥

भाषार्थ.—हे भगवन् प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन  
किया है ? तब श्री भगवान् ने उत्तर दिया कि—हे गौतम ! पंच  
प्रकारसे कहा गया है जैसे कि श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष १ चक्षुर्गिन्द्रिय  
प्रत्यक्ष २ घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष ३ जिह्वाइन्द्रिय प्रत्यक्ष ४ स्पर्शइन्द्रिय  
प्रत्यक्ष ५ ॥ यह इंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है, किन्तु निश्चय नयके  
मतमें यह परोक्ष ज्ञान है अपितु व्यवहारनयके मतमें यह इंद्रिय  
जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष माने है जैसे कि—नयचक्रमें लिखा है कि—

सम्यग् ज्ञानं प्रमाणम् । तद्धिधा प्रत्यक्षे-  
तर भेदात् । अवधि मनःपर्यायवेकदेश प्रत्यक्षौ  
केवलं सकल प्रत्यक्षं । मतिश्रुति परोक्षे इति  
वचनात् ॥



इसमें यह कथन है कि—सामान्यज्ञान प्रमाणभूत है किन्तु सामान्यज्ञान द्वि प्रकारसे है, परमज्ञान और ज्ञान । अपितु आती मनःपर्यवज्ञान यह देश परमज्ञान हैं और केवलज्ञान साकल्य प्रत्यक्ष है, किन्तु मतिभूत परमज्ञान हैं ।

इसी प्रकार श्री नारी नी गुरुओं भी कथन है कि मतिभूत परमज्ञान हैं और अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान यह प्रत्यक्षज्ञान है किन्तु व्यवहारजन्यके मतमें इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है॥

प्रश्नः—नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कौनसा है ?

उत्तरः—नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप लिखता हूं, पढ़िये।

मूल ॥ सेकितं नोइंद्रिय पञ्चकखे २ तिविहे  
पं. तं. उहिनाण पञ्चकखे मणपज्जावनाण पञ्चकखे  
केवलनाण पञ्चकखे सेतं नोइंद्रिय पञ्चकखे ॥

भाषार्थः—हे भगवन् ! नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कौनसा है ? भगवान् कहते हैं कि—हे गौतम ! नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे कि अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान । यह तीन ही ज्ञान नोइंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान हैं, क्योंकि यह तीन ही ज्ञान इंद्रियजन्य पदार्थोंके आश्रित नहीं हैं, अपितु अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान यह दोनों देशप्रत्यक्ष है और

केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है ॥ अवाधि ज्ञानके पदभेद हैं जैसेकि अनुग्रामिक १ (साथही रहनेवाला), अनानुग्रामिक २ (साथ न रहनेवाला), वर्द्धमान ३ (वृद्धि होनेवाला), हायमान ४ (हीन होनेवाला), प्रतिपातिक ५ (गिरनेवाला), अप्रतिपातिक ६ (न गिरनेवाला); और मनःपर्यवज्ञानके दो भेद हैं जैसे कि—ऋजुमति १ और विपुलमति २ । केवलज्ञानका एक ही भेद है क्योंकि यह सकल प्रत्यक्ष है । इसी वास्ते इस ज्ञानवालेको सर्वज्ञ वा सर्वदर्शी कहते हैं । इनका पूर्ण विवर्ण श्री नंदीजी सूत्रसे देखो ॥ यह प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद हुए अब अनुमान प्रमाणका स्वरूप लिखता हूं ॥

मूल ॥ सेकितं अणुमाणे १ तिविहे पं. तं. पुव्वं सेत्तवं दिट्ठि साहम्मवं सेकितं पुव्वं २ मायापुत्तं जहाणटं जुवाणं पुणरागयंकाइं पच्चभि जाणिज्जा पुव्वलिंगेण केणइतरं भवइयणवा वण्णेणवा मत्तेणवा दंठणेणवा तिल्लण्णवा सेतं पुव्वं ॥

भाषार्थः—शिष्यने गुरुसे प्रश्न कियाकि हे भगवन् अनु-



दक्षिणं मोरं कंकाइयं हयहलियं हृदियगुल-  
गुलाइयं रहं घणघणाइयं सेतं कज्जणं ॥

भावार्थः—श्री गौतम प्रभुजी श्री भगवान्मे प्रणम्य है कि, हे भगवन ! वे बौद्ध हैं गोपबन्धु अनुमान प्रमाण । तब भगवान् प्रतिपादन करते हैं कि हे गौतम ! गोपबन्धु अनुमान प्रमाण पंच प्रकारसे बता गया है जैसेकि कार्य करते । हाथ करके १ गुण करते १ अवश्य करके ६ पात्र करते ५ ॥ फिर गौतमजीने प्रश्न किया कि हे भगवन ! वे बौद्ध हैं गोपबन्धु अनुमान प्रमाण जो कार्य करते जाना जाता है । तब भगवान्ने उत्तर दिया कि हे गौतम ! जैसे ( १ ) हाथ करके जाना जाता है अर्थात् हाथके हाथ जो मन्दन मन्दन जाना जाता है कि जो हाथ हाथों से हाथ है, हाथ प्रकार से भी हाथों करके, तब ६ हाथ करते, हाथ से १ बंधन करके, ५ हाथ करते अर्थात् हाथों करके, हाथ गुलगुलाइ करके, हाथ घण घण करके, यह कार्य करने अनुमान प्रमाण है, जो कि उक्त वर्णों कार्य होने पर ही गोपबन्धु अनुमान प्रमाण है तब उक्त अनुमान प्रमाण द्वारा कार्य करने ही जाना है ॥



तेषां तेषां गुणेषां ॥

भाषार्थः—प्रश्नः—गुण अनुमान प्रमाणका क्या लक्षण है ?

उत्तरः—जैसे सुवर्ण पाषाणोपरि संवर्षण करनेसे शुद्ध प्रतीत होता है अर्थात् सुवर्णकी परीक्षा कपोटीपर होती है, दुष्प गंध करके देखे जाते हैं, लवण रस करके वा मटिंग आ-  
स्वादन करके, वायु रग्म करके निर्णय दिए जाते हैं. निम्नका नाम गुण अनुमान प्रमाण है, क्योंकि गुणके निर्णय होनेसे पदार्थोंके शुद्ध वा अशुद्धता मध्य ही ज्ञान हो जाता है ॥

अथ अवयव अनुमान प्रमाणके स्वरूपको जित्वा है—

मूल ॥ तैदितं अवयवेणं २ सहितं निगोणं  
कुम्कुटसिन्हायणं हृत्पिदिनाण्येणं वाराहदाटायं  
मोरपिठेणं आनंजकुणेणं जम्बूनहेणं चतुरिवाह-  
गोणं दानरत्नगूलेणं दुष्पयसपुष्पसादि चतुर-  
यंगवसादि बहुष्पयंगोनिवासादि नीलैन्द्रेणं  
वस्तुहृत्पिठेणं सहितं वल्लभ्याहारिं परिगन्धे-  
णं जट्जायेका सहितं निवन्तेनं निगोणं  
दोहपानं जटिचण्डायाहाय नैनं जम्बूनहेणं ॥१॥



मूल ॥ सेकितं आसयणं २ अग्नि धूमेणं  
सलिलं वलागेणं बुद्धि अन्त विकारेणं कुल  
पुत्तलीन्न समायारेणं । सेतं आसयणं सेतं  
सेतवं ॥

भाषार्थः—श्री गौतमजीने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन् !  
आश्रय अनुमान प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है ?  
भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! आश्रय अनुमान प्रमाण  
इस प्रकारसे कथन किया गया है कि जैसे अग्नि धूम करके  
जाना जाता है, जल बगलों करके निश्चय किया जाता है, दृष्टि  
पादलोंके विकारमे निर्णय की जाती है, कुल पुत्र गील समाचर-  
णसे जाना जाता है, इसका नाम आश्रय अनुमान प्रमाण है  
और इसकेही द्वारा साध्य, मिद्ध, पक्ष, इत्यादि सिद्ध होते हैं ।  
तो यह शेषवत् अनुमान प्रमाण पूर्ण हुआ ॥

अब दृष्टि साधर्म्यता का वर्णन किया जाना है—

मूल ॥ सेकितं दिदृष्टिस्ताहम्मव २ लुविहे पं.  
तं. तामान्नदिदृष्टं च वित्तेसदिदृष्टं च सेकितं तामा-  
न्नदिदृष्टं २ जहा एगो पुरित्तो तहा वद्दे पुरित्तो





सूत्र ॥ सेकितं वित्तसदिष्टं रसे जहा नामए  
केष्ट पुरिस्ते बहुणं मज्जेपुवं दिष्टं पुरित्तं पच्चत्ति  
जाणेज्जा अयं पुरिस्ते एवं करिस्तावणे ॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी भगवान् से पृच्छा करते हैं कि—हे भगवन् ! विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण किम प्रकारस है ? भगवान् उत्तर देते हैं । कि हे गौतम ! विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण इस प्रकारसे है जैसेकि—किसी पुरुषने किसी अमुक व्यक्ति को किसी अमुक सभामें बैठे हुएको देखा तो मनमें विचार किया कि यह पुरुष मेरे पूर्वदृष्ट है अर्थात् मैंने इसे वही पर देखा हुआ है. इस प्रकारसे विचार करते हुएने किसी लक्षणद्वारा निर्णय ही करलिया कि यह वही पुरुष है जिसको मैंने अमुक ग्यानोपरि देखा था । इसी प्रकार मुद्राकी भी परीक्षा करली अर्थात् बहुत मुद्राओंमेंसे एक मुद्रा जो उसके पूर्व दृष्ट थी उसको जान लिया उसका ही नाम विशेष दृष्ट अनुमान प्रमाण है ॥ अपितु—

सूत्र ॥ तंतमात्तज तिविहं गहणं जव-  
इ तं. तीयकालगहणं पुरुप्पणकालगहणं अ-  
णागयकालगहणं ॥



सृष्टष्टिके होनेपर ही यह लक्षण हो सक्ते हैं सो इसका नाम भूत अनुमान प्रमाण है क्योंकि इसके द्वारा भूत पदार्थोंका बोध भली प्रकारसे हो जाता है ॥

सूत्र ॥ सेकिंतं पशुप्पण कालग्गहणं २ साहु गोयरग्गगयं विह्वमिय पजर भत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जाइ जहा सुन्निक्खं वट्ठइ सेतं पशुप्पन्न कालग्गहणं ॥

भाषार्थः—( मध्व ) किस प्रकारसे वर्तमान कालके पदार्थोंका अनुमान प्रमाणके द्वारा बोध होता है ? ( उत्तर ) जैसे कोई साधु गौचरी ( भिक्षा ) के वास्ते घरोंमें गया तब साधुने घरोंमें मधुर अन्नपानीको देखा अपितु इतना ही किन्तु अन्नादि पट्टतसा परिष्ठापना करते हुआँको अवलोकन किया तब साधु अनुमान प्रमाणके आश्रय होकर कहने लगाकि जहां पर शुभिक्ष ( मुकाल ) वर्तना है, सो यह वर्तमानके पदार्थोंका बोध करा-नेवाला है—अनुमान प्रमाण है ॥

सूत्र ॥ सेकिंतं अणाय कालग्गहणं २ थ- भन्तस्त निम्मलतं कसिणाय गिरित्त विज्जु मेहा



मूल ॥ एएसिंविबज्जासेणंति विहंगहणं न-  
 वइ तं. तीयकालग्गहणं पनुप्पण कालग्गहणं अ-  
 णागय कालग्गहणं सैकिंतं तीयकालग्गहणं णित-  
 एणइ वणाइं अनिप्फणत्तस्संवा मेइणी सुक्काणिय  
 कुंड सर एदि दह तलागाणि पासित्ता तेणं ता-  
 हिज्जाइ जद्दा कुवुट्टि आसी सेतं तीयकालग्गहणं॥

भाषार्थः—जो पूर्व तीन कालके पदार्थोंका अनुमान प्रमा-  
 णके द्वारा जान लेना लिखा गया है उसमें विपरीत भी तीन  
 कालके पदार्थोंका दोष निम्न कथनानुसार हो जाता है । जैसेकि  
 वृणवे रक्षित वर्ण है, पृथ्वीर्म धावादि भी उन्मत्त नहीं हुए  
 है, और वृष्ट, सर, नदी, झर, तलागादि भी सर्व नष्टान्त  
 हुए हुए दीखते हैं अर्थात् जलान्त हुए हुए, पर अनुमान  
 प्रमाणों द्वारा निम्न किया जाता है कि जलान्त हुए हुए वृष्टी  
 नहीं है, क्योंकि यदि वृष्टी होती तो वह जलान्त नहीं हुक्का  
 होते तो हुक्का नाम भूतदार अनुमान प्रमाण है ॥

मूल ॥ तेकिंतं पनुप्पन्न कालग्गहणं न ता-









सूत्र ॥ सेकिंत्तं किंचि साहम्मोवणीए २  
जहा मंदिरो तहा सरिसवो जहा सरिसवो तहा  
मंदिरो एवं समुदो २ गोप्पयं आइच्चोखज्जोत्तो  
चंदोकुमुदो सेत्त किंचि साहम्मे ॥

भाषार्थः—( पूर्वपक्षः ) किंचित् साधर्म्योपनीत किम प्रकार  
प्रतिपादन किया है ? ( उत्तरपक्षः ) जैसे मेरुपर्वत वृत्त (गोल) है  
इसी प्रकार सरिसवका बीज भी गोल है, सो यह किञ्चित् मात्र  
साधर्म्यता है क्योंकि वृत्ताकारमें दोनोंकी साम्यता है परंतु  
अन्य प्रकारसे नहीं है। ऐसे ही अन्य भी उदाहरण जान लेने-  
जैसेकि समुद्र गोपाद, आदित्य ( सूर्य ) और खद्योत, चंद्र और  
कुमुद. सो यह किंचित् साधर्म्यता है ॥

सूत्र ॥ सेकिंत्तं पायसाहम्मोवणीय २ जहा  
गो तहा गवउ जहा गवउ तहा गो सेत्तं पाय-  
पाय साहम्मे ॥

भाषार्थः—( प्रश्नः ) वह कौनसा है प्रायः साधर्म्योपनीत  
उपमान प्रमाण ? ( उत्तरः ) जैसे गो है वैसी ही आहुतिभुक्त



कार्य कीया है, वलदेवने वलदेवके सामान, वासुदेवने वासुदेवके सामान छत किये हैं तथा माधु साधुके सामान व्रतादिको पाकन करता है, यह सर्व साधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण है ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं वेहम्मोवणीय २ तिविहे  
पं. तं. किंचिवेहम्मे पायवेहम्मे सबवेहम्मे से-  
किंत्तं किंचिवेहम्मे जहा सामलेरो न तहा वा-  
हुलेरो जहा वाहुलेरो न तहा सामलेरो सेत्तं  
किंचिवेहम्मे ॥

भाषार्थः—( प्रश्नः ) वह कौनसा है वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण ? ( उत्तरः ) वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसेकि—किंचित् वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण १ प्रायः वैधर्म्यत्व २ सर्व वैधर्म्यत्व ३ ॥ ( पूर्वपक्षः ) किंचित् वैधर्म्य उपमान प्रमाणका क्या उदाहरण है ? ( उत्तरपक्षः ) जैसे श्याम गोका अपत्य है वैसी ही श्वेन गोका अपत्य नहीं है अर्थात् जैसे श्याम वर्णकी गोका वन्म है वैसी ही श्वेन गोका वन्म नहीं है, क्योंकि वर्णमें भिन्नता है इसका ही नाम किंचित् वैधर्म्यत्व उपमान है ॥ सर्व अवस्थादिमें एकत्वता मिट्ट होनेपर केवल वर्णकी विभिन्नतामें किंचित् वैधर्म्यत्व उपमान प्रमाण मिट्ट हो गया ॥



भाषार्थः—( पूर्वपक्षः ) सर्व वैधर्म्यताके उदाहरण किस प्रकारसे होते हैं ? ( उत्तरपक्षः ) सर्व वैधर्म्यताके उदाहरण नहीं होते हैं किन्तु फिर भी सुगमताके कारणसे दिखलाये जाते हैं, जैसे कि—नीचने नीचके सामान ही कार्य किया है, दासने दासके ही तुल्य काम किया है, काकने काकवत् ही कृत किया है वा चांडालने चांडाल तुल्य ही क्रिया की है सो यह सर्व वैधर्म्यताके ही उदाहरण हैं ॥ इसलिये जहांपर ही सर्व वैधर्म्योपनीत उपमान प्रमाण पूर्ण होता है इसका ही नाम उपमान प्रमाण है ॥ इसके ही आधारसे सर्व पदार्थोंका यथायोग्य उपमान किया जाता है ॥ अब आगम प्रमाणका वर्णन करते हैं ॥

मूल ॥ सेकिंत्तं आगमे १ दुविहे पं. तं. लो-  
श्य लोयुत्तरिय सेकिंत्तं लोइय २ जन्नंइमं अन्ना-  
णीहिं मिच्छादिहीहिं सव्वंद बुद्धिमइ विगप्पि-  
यं तं ज्ञारहं रामायणं जाव चत्तारि वेया संगो-  
वंगा सेत्तं लोश्य आगमे ॥

भाषार्थः—श्री गौतम प्रभुजी भगवान्मे प्रश्न करने हैं कि हे प्रभो ! आगम प्रमाण किस प्रकारसे वर्णन किया गया है ?









मूल ॥ तैकिंसं दंसण गुणप्पमाणे २ चउ-  
विहे पं. तं. चक्खु दंसण गुणप्पमाणे अचक्खु  
दंसण गुणप्पमाणे उहि दंसण गुणप्पमाणे केवल  
दंसण गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—( प्रश्नः ) दर्शन गुण प्रमाण किस प्रकारसे है ?  
( उत्तर ) दर्शन गुण प्रमाण चतुर्विधमे प्रतिपादन किया गया  
है जैसेकि चक्षुः दर्शन गुण प्रमाण १ अचक्षुः दर्शन गुण प्रमाण  
२ अवाधि दर्शन गुण प्रमाण ३ केवल दर्शन गुण प्रमाण ४ ॥  
अब चाहे ही दर्शनोके लक्षण वा साधनताको लिखते है ॥

मूल ॥ चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घममम-  
माईसु अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणिस्स आय-  
जावे उहिदंसणं उहिदंसणिस्स सव खवि देवेलु न  
पुण सव्वपज्जेवेलु केवल दंसणं केवल दंसणिस्स  
सव देवेहिं सव पज्जेवेहिं तेतं दंसणं गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—दर्शनार्थी दर्शने क्षमोक्त होनेसे जीवको  
सब दर्शन पदार्थोंसे पदार्थोंसे होता है. अर्थात् सब आकाश-



णिय चरित्त गुणप्पमाणे परिहार विसुद्धिय च-  
रित्त गुणप्पमाणे सुहुमसंपराय चरित्त गुणप्पमाणे  
अहक्खाय चरित्त गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—(शंका) चारित्र गुण प्रमाण किनने प्रकारसे प्रति-  
पादन किया गया है? (समाधान) पंचप्रकारसे प्रतिपादन किया  
गया है—जैसेकि सामायिक चारित्र गुण प्रमाण । क्योंकि चारित्र  
उसे कहते हैं जो आचरण किया जाये सो सामायिक आत्मिक  
गुण है जैसेकि सम, आय, इक, संधि करनेसे होता है सामा-  
यिक, जिसका अर्थ है कि सर्व जीवोंसे समभाव करनेसे जो  
आत्माको लाभ होता है उसका ही नाम सामायिक है । इसके  
द्वि भेद हैं स्तोत्र काल मुहूर्तादि प्रमाण आयु पर्यन्त सावृत्ति  
रूप, सावध योगोंका त्यागरूप सामायिक चारित्र प्रमाण है ।  
इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय चारित्र गुण प्रमाण है जो कि पूर्व  
पर्यायको छेदन करके संयममें स्थापन करना । परिहार विशुद्धि  
चारित्र गुण प्रमाण उसका नाम है जो संयममें बाधा करने-  
वाले परिणाम हैं, उनका परित्याग करके सुंदर भावोंका धारण  
करना तथा नव मुनि गडसे बाहिर होकर १८ मास पर्यन्त  
तप करते हैं परिहार विशुद्धिके अर्थे उसका नाम परिहार



दुविहे पं. तं. निविस्तमाणेय णिविट्ठकाइय  
 सुहुमसंपरायण दुविहे पं. तं. पक्खिवाइय अप्प-  
 निवाइय अहक्खाय चरित्त गुणप्पमाणे दुविहे  
 पं. तं. ठउमत्थेय केवलीय सेत्तं चरित्त गुणप्पमा-  
 णे सेत्तं जीव गुणप्पमाणे सेत्तं गुणप्पमाणे ॥

भाषार्थः—( प्रश्नः ) सामायिक चारित्र गुणप्रमाण कितने प्रकारसे वर्णन किया गया है ? ( उत्तरः ) द्वि प्रकारसे, जैसे कि इत्वरू काल १ यादवजीवपर्यन्त २ । ( प्रश्नः ) छेदोपस्थापनी चारित्रिके कितने भेद हैं ? ( उत्तरः ) द्वि भेद है, जैसे कि साविचार १ निरविचार २ । ( प्रश्नः ) परिहार विशुद्धि चारित्र भी कितने वर्णन किया गया है ?

( उत्तरः ) इसके भी द्वि भेद हैं जैसे कि प्रवेशरूप १ निवृत्तिरूप २ ॥

( प्रश्नः ) सूक्ष्म संपराय चारित्रिके कितने भेद हैं ?

( उत्तरः ) दो भेद हैं, जैसे कि प्रतिपाति १ अप्रतिपाति २ ।

( प्रश्नः ) यथाख्यात चारित्र भी कितने प्रकार वर्णन किया गया है ?



भूते समभिरुत्सु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ ६ ॥

एकस्याऽपि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते ।

क्रियाभेदेन भिन्नत्वाद् एवंभूतोऽभिमन्यते ॥ ७ ॥

तथा हि—

नैगमनयदर्शनानुसारिणौ नैयायिक-वैशेषिकौ । संग्रहाभि-  
प्रायप्रवृत्ताः सर्वेऽप्यद्वैतवादाः । सांख्यदर्शनं च । व्यवहारनयानु-  
पाति प्रायश्चार्वाकदर्शनम् । ऋजुसूत्राऽऽकृतप्रवृत्तबुद्ध्यस्तथागताः ।  
शब्दादिनयावलम्बिनौ वैयाकरणादयः ॥

प्रश्नः—अर्हन् देवने नय कितने प्रकारसे वर्णन किये हैं, क्यों-  
कि नय उसका नाम है जो वस्तुके स्वरूपको भली प्रकारसे  
प्राप्त करे ? अर्थात् पदार्थोंके स्वरूपको पूर्ण प्रकारसे प्रगट करे ॥

उत्तरः—अर्हन् देवने सप्त प्रकारसे नय वर्णन किये हैं ॥

प्रश्नः—वे कौन २ से हैं ?

उत्तरः—सुनिये ॥

नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३ ऋजुसूत्र ४ शब्द ५ सम-  
भिरुद्ध ६ एवंभूत ७ ॥ इनके स्वरूपको भी देखिये ।

नैगमद्वेधा भूतभाविवर्त्तमानकाल भेदात् । अतीव वर्तमाना-  
नोपपन्नं यत्र समभूत नैगमो यथा—अद्य दीपोत्सवादिने श्री वर्द्धमा-





भाषार्थः—संग्रह नय भी द्वि प्रकारसे वर्णन किया गया है जैसे कि—सामान्य संग्रह विशेष संग्रह; अपितु सामान्य संग्रह इस प्रकारसे है, जैसेकि सर्व द्रव्य परस्पर अविरोधी भावमें हैं अर्थात् सर्व द्रव्योंका परस्पर विरोध भाव नहीं हैं, अपितु विशेष संग्रहमें, यह विशेष है कि जैसेकि जीव द्रव्य परस्पर अविरोधी भावमें है क्योंकि जीव द्रव्यमें उपयोग लक्षण वा चेतन शक्ति एक सामान्य ही है सो सामान्य द्रव्योंमेंसे एक विशेष द्रव्यका वर्णन करना उसीका ही नाम संग्रह नय है ॥

॥ अथ व्यवहार नय वर्णन ॥

व्यवहारोऽपि द्विधा सामान्यसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च इति व्यवहारोऽपि द्विधा ॥

भाषार्थः—व्यवहार नय भी द्वि प्रकारसे ही कथन किया गया है जैसेकि सामान्य संग्रहरूप व्यवहार नय जैसेकि द्रव्य भी द्वि प्रकारका है यथा जीव द्रव्य अजीव द्रव्य ॥ अपितु विशेष संग्रहरूप व्यवहार इस प्रकारसे है जैसेकि जीव संसारी १ और मोक्ष २ क्योंकि संसारी आत्मा कर्मोंसे युक्त हैं और मोक्ष आत्मा कर्मोंसे रहित है, इस दिये ही उनके







ऋजु सूत्र है क्योंकि यह नय सांप्रति कालको ही मानता है ४ । शब्द नयसे शब्दोंकी व्याकरण द्वारा शुद्धि की जाती है जैसेकि प्रकृति, प्रत्यय, यथा धर्म शब्द प्रकृतिरूप है इसको स्वौजश् अमौद् शस् इत्यादि प्रत्ययों द्वारा सिद्ध करना तथा भू सत्तायां वर्तते इस धातुके रूप दश लकारोंसे वर्णन करने यह सर्व शब्द नयसे वनते है ५ । जो पदार्थ स्वगुणोंमें आरूढ है वही समभिरूढ नय है तथा शब्दभेद हो अपितु अर्थभेद न हों जैसेकि शक्र इन्द्रः पुन्दर मधवन् इत्यादि । यह सर्व शब्द समभिरूढ नयके मतसे वनते है ६ । क्रिया प्रधान करके जो द्रव्य अभेद रूप हैं उनका उसी प्रकारसे वर्णन करना वही एवंभूत नय है ७ ॥ सो सम्यग्दृष्टि जीवोंको सप्त नय ही ग्राह्य है किन्तु मुख्यतया करके दोइ नय हैं ॥ यथा—

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते । ता-  
वन्मूलनयो द्वौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च । तत्र  
निश्चयनयो अज्ञेदविषयो व्यवहारज्ञेदविषयः ॥

भाषार्थः—अपितु अध्यात्म भाषा करके नय दो ही हैं जैसे कि निश्चय नय १ व्यवहार नय २ । सो निश्चय अभेद विषय है

















( ८३ )

विशुद्ध नय है )॥ यह सर्व उत्तरोत्तर शुद्धरूप नैगम नयके ही वचन हैं ॥

पुरुषः—मध्य घरमें तो महान् स्थान है, आप कौनसे स्थानमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं स्वः शय्यामें वसता हूं ( यह संग्रह नय है )  
विछावने प्रमाणमें ॥

पुरुषः—शय्यामें भी महान् स्थान है, आप कहाँपर रहते हैं ?

व्यक्तिः—असंख्यात प्रदेश अवगाह रूपमें वसता हूं  
( यह व्यवहार नय है ) ॥

पुरुषः—असंख्यात प्रदेश अवगाह रूपमें धर्म अधर्म आकाश पुद्गल इनके भी महान् प्रदेश हैं, आप क्या सर्वमें ही वसते हैं ?

व्यक्तिः—नहींजी, मैं तो चेतनगुण ( स्वभाव ) में वसता हूं ॥ यह ऋजुसूत्र नयका वचन है ॥

पुरुषः—चेतन गुणकी पर्याय अनंती है जैसेकि ज्ञान चेतना अज्ञान चेतना, आप कौनसे पर्यायमें वसते हैं ?

व्यक्तिः—मैं तो ज्ञान चेतनामें वसता हूं ( यह शब्द नय है ) ॥



और ऋजु नयके मतमें जब मन वचन कायाके योग शुभ वर्तने लगे तब ही सामायिक हुई ऐसे माना जाता है ॥ शब्द नयके मतमें जब जीवको वा अजीवको सम्यक् प्रकारसे जान लिया फिर अजीवसे ममत्व भावको दूर कर दीया तब सामायिक होती है ॥ एवंभूत नयके मतमें शुद्ध आत्माका नाम ही सामायिक है ॥ यदुक्तं—

आया सामाद्वय आया सामाद्वयस्त श्रुते ।

इति वचनात् अर्थात्, आत्मा सामायिक है और आत्मा ही सामायिकका अर्थ है, सो एवंभूत नयके मतसे शुद्ध आत्मा शुद्ध उपयोगयुक्त सामायिकवाला होता है ॥ सो इसी प्रकार 'जो पदार्थ है वे सप्त नयोंद्वारा भिन्न २ प्रकारसे सिद्ध होते हैं और उनकी उसी प्रकार माना जाये तब आत्मा सम्यक्त्वयुक्त हो सक्ता है, क्योंकि एकान्त नयके माननेसे मिथ्या ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है अकिन्तु अनेकान्त मतका और एकान्त मतका ही-और भी का ही विशेष है, जैसेकि—एकान्त नयवाले जब किसी पदार्थका वर्णन करते हैं तब—'ही'—का ही प्रयोग करते हैं जैसेकि, यह पदार्थ ऐसे ही है । किन्तु अनेकान्त मत जब किसी पदार्थका वर्णन करता है तब 'भी' का ही प्रयोग ग्रहण





भाषार्थः—श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी स्कंधक संन्यासीको जीवका निम्न प्रकारसे स्वरूप वर्णन करते हैं कि हे स्कंधक ! द्रव्यसे एक जीव सान्त है १ । क्षेत्रसे असंख्यात प्रदेशरूप जीव असंख्यात प्रदेशों पर ही अवगहण हुआ आकाशपेक्षा सान्त है २ । कालसे अनादि अनंत है क्योंकि उत्पत्तिसे रहित है इस लिये कालपेक्षा जीव नित्य है ३ । भावसे जीव नित्य अनंत ज्ञान पर्याय, अनंत दर्शन पर्याय, अनंत चारित्र पर्याय, अनंत गुरु लघु पर्याय, अनंत अगुरु लघु पर्याय युक्त अनंत है ४ । सो हे स्कंधक ! द्रव्यसे जीव सान्त, क्षेत्रसे भी सान्त, अपितु काल भावसे जीव अनंत है, तथा द्रव्यार्थिक नयापेक्षा जीव अनादि अनंत है, पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त है, जैसेकि—जीव द्रव्य अनादि अनंत है पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त है क्योंकि कभी नरक योनिमें जीव चला जाता है, कभी तिर्यग् योनिमें, कभी मनुष्य योनिमें, कभी देव योनिमें । जब पूर्व पर्याय व्यवच्छेद होता है तब नूतन पर्याय उत्पन्न हो जाता है । इसी अपेक्षासे जीव सादि सान्त है तथा जीव चतुर्भंगके भी युक्त है, यथा जीव द्रव्य स्वगुणापेक्षा वा द्रव्या-



भी लिखे हैं जिनको लोग जैनोंका सप्तभंगी न्याय कहते हैं,  
जैसेकि—

१ स्यादस्त्येव यदः—कयंचित् यद है स्वगुणोंकी अपेक्षा  
यद अस्तित्व है ।

२ स्यान्नास्त्येव यदः—कयंचित् यद नहीं है ।

३ स्यादस्ति नास्ति च यदः—कयंचित् यद है और कयंचित्  
यद नहीं है ।

४ स्यादवक्तव्य एव यदः—कयंचित् यद अवक्तव्य है ।

५ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च यदः—कयंचित् यद है और अ-  
वक्तव्य है ।

६ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च यदः—कयंचित् नहीं है तथा  
अवक्तव्य यद है ।

७ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च यदः—कयंचित् है नहीं है  
इस रूपसे अवक्तव्य यद है ।

मित्रवरो ! यह सप्त भग हैं । यह घटपटादि पदार्थोंमें  
पक्ष प्रतिपक्ष रूपमें सप्त ही सिद्ध होते हैं जैसेकि यद द्रव्य स्वगुण  
शुद्ध अस्तित्वमें है । प्रत्येक द्रव्यमें स्वगुण चार चार होते हैं  
द्रव्यत्व क्षेत्रत्व कालत्व भावत्व । यदका द्रव्य मृत्तिका है, क्षेत्र जैसे



क्रिया तो वही समय उस पुरुषकी बैठनेकी क्रियाके निषेधका भी है इस लिये यह अवक्तव्य धर्म है । इसी प्रकार अस्ति अवक्तव्य रूप पंचम भंग भी घटमें सिद्ध है क्योंकि वे घट पर गुणकी अपेक्षा नास्तिरूप भी है इस लिये एक समयमें अस्ति अवक्तव्य धर्मवाला है । इसी प्रकार स्यात् नास्ति अवक्तव्यरूप षष्ठम भंग भी एक समयकी अपेक्षा सिद्ध है । और स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्य रूप सप्तम भंग भी एक समयमें सिद्धरूप है किन्तु वचनगोचर नहीं है क्योंकि एक समयमें अस्ति नास्ति रूप दोनों भाव विद्यमान हैं परंतु वचनसे अगोचर है अर्थात् कथन मात्र नहीं है ॥ इसी प्रकार सर्व द्रव्य अनेकान्त मतमें माने गये हैं और नित्यअनित्य भी भंग इसी प्रकार बन जाते हैं । यथा—१ स्यात् नित्य २ स्यात् अनित्य ३ स्यात् नित्यम-नित्यम् ४ स्यात् अवक्तव्य ५ स्यात् नित्य अवक्तव्यम् ६ स्यात् अनित्य अवक्तव्यम् ७ स्यात् नित्यमनित्य युगपत् अवक्तव्यम् इत्यादि ॥ इन पदार्थोंका पूर्ण स्वरूप जैन सूत्र वा जैन न्यायग्रंथोंसे देख लें । और संसारको भी जैन सूत्रोंमें सान्त और अनंत निम्न प्रकारसे लिखा है । यदुक्तमागमे—

एवं खलु मए खंधया चउविहे दोए पं.



भाषार्थः—श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी स्कंधक संन्यासी-  
 को लोगका स्वरूप निम्न प्रकारसे प्रतिपादन करते हैं कि  
 है स्कंधक ! द्रव्यसे लोक एक है इस लिये सान्त है ? । क्षेत्रसे  
 लोक असंख्यात योजनोंका दीर्घ वा विस्तीर्ण है और असं-  
 ख्यात योजनोंकी परिधिवाला है इस लिये क्षेत्रसे भी लोक  
 सान्त है २ । कालसे लोग अनादि है अर्थात् किसी समयमें  
 भी लोगका अभाव नहि था, अब नहीं है, नाही होगा अर्थात्  
 उत्पत्ति रहित है, नित्य है, शाश्वत है, अन्नय है, अव्यय है,  
 अवास्यत है, किन्तु पंच भरत पंच ऐरवय क्षेत्रोंमें उत्सर्पिणि  
 काल अवसर्पिणि काल दो प्रकारका समय परिवर्तन होता  
 रहता है और एक एक कालमें षट् षट् समय  
 होते हैं जिसमें षट् वृद्धिरूप षट् दानीरूप होते हैं अपितु पदा-  
 योंका अभाव किसी भी समयमें नहीं होता, किन्तु किसी वस्तु-  
 की वृद्धि किसीकी न्यूनता यह अवश्य ही हुआ करती है । इनका  
 स्वरूप श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिसे जानना । अपितु कालसे लोग अ-  
 नादि अनंत है क्योंकि जो लोग जीव प्रकृति ईश्वर यह तीनोंको  
 अनादि मानते हैं और आकाशादिकी उत्पत्ति वा प्रलय सिद्ध  
 करते हैं तो भला आधारके बिना परार्थ कैसे ठहर सकते हैं ।  
 इस लिये लोगके अनादि माननेमें कोई भी बाधा नहीं पड़ती





इन्द्रियें होती हैं । और तेईन्द्रिय जाति कुंशु वा पिप्पलकादि इनके शरीर, मुख, घ्राण यह तीन इन्द्रिय होती हैं । और चतुरिन्द्रिय जातिके चार इन्द्रिय होती है जैसेकि-शरीर, मुख, घ्राण, चक्षु, मांसिकादियें चतुरिन्द्रिय जीव होते हैं । और पंचिन्द्रिय जातिके पांच ही इन्द्रियें होती है जैसेकि शरीर; मुख, घ्राण, जीह्वा, चक्षु, श्रोत्र यह पांच ही इन्द्रियें नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यचोंके होते हैं. जैसे जलचर, स्थलचर, खेचर अर्थात् जो संज्ञि<sup>१</sup> होते हैं वे सर्व जीव पंचिन्द्रियें होते हैं । अपितु मुक्तिके लिये केवल मनुष्य जाति ही कार्यसाधक है और कर्मानुसार ही मनुष्योंका वर्णभेद माना जाता है, यदुक्तमागमे-

कम्मुणा वंज्जणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।

वइस्सो कम्मुणा होइ सुद्धो हवइ कम्मुणा ॥

उत्तराध्यायन सूत्र अ० २५ ॥ गाथा ३३ ॥

भाषार्थ:-ब्रह्मचर्यादि व्रतोंके धारण करनेसे ब्राह्मण होता है, और प्रजाकी न्यायसे रक्षा करनेसे क्षत्रिय वर्णयुक्त हो जाता है, व्यापारादि क्रियाओं द्वारा वैश्य होता है, सेवादि क्रियाओंके करनेसे शूद्र हो जाता है, अपितु कर्मसे ब्राह्मण १

१. संज्ञि जीव मनवालोंका नाम हैं तथा जो गर्भसे उत्पन्न हों ।







श्रुत उसका नाम है जो शब्द सुनकर पदार्थका ज्ञान तो पूर्ण हो जाये अपितु वह शब्द उस भांति लिखनेमें न आवे जैसे छीन्, मोगका शब्द इत्यादि ॥ ( ३ ) संज्ञिश्रुत उसे कहते हैं जिसको कालिक उपदेश ( सुनके विचारनेकी शक्ति ) हितोपदेश ( सुनकर धारणेकी शक्ति ) दृष्टिवादोपदेश ( क्षयोपशम भावसे वस्तुके जाननेकी शक्तिका होना तथा क्षयोपशम भावसे संज्ञि भावका प्राप्त होना ) यह तीन ही प्रकार शक्ति प्राप्त हो उसका नाम संज्ञिश्रुत है ॥ ( ४ ) असंज्ञिश्रुत उसका नाम है जिन आत्माओंमें कालिक उपदेश और हितोपदेश नहीं है केवल दृष्टिवादोपदेश ही है अर्थात् क्षयोपशमके प्रभावसे असंज्ञि भावको ही प्राप्त हो रहे हैं ॥ ( ५ ) सम्यग्श्रुत—जो द्वादशाङ्ग सूत्र सर्वज्ञ प्रणीत है अथवा प्राप्त प्रणीत जो वाणी है वे सर्व सम्यग्श्रुत है ॥ ( ६ ) मिथ्यात्वश्रुत—जो सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्र्यसे वर्जित ग्रंथ हैं जिनमें पदार्थोंका यथावत् वर्णन नहीं किया गया है और अनाप्त प्रणीत होनेसे वे ग्रंथ मिथ्यात्वश्रुत है ॥ ( ७ ) सादिश्रुत उसको कहते हैं जिस समय कोई पुरुष श्रुत अध्ययन करने लगे उस कालकी अपेक्षा वे सादिश्रुत हैं । क्षेत्रकी अपेक्षासे पंच भरत पंच ऐरवत क्षेत्रोंमें द्वादशांग सादि हैं, तीर्थकरोंका निरद आदिना रोगा कालसे उत्सर्पिणि अवमर्पिणिका



अपेक्षा श्रुत अनंत ही है क्योंकि क्षयोपशम भाव आत्मगुण है इस लिये श्रुत भी अपर्यवसान है ४ ॥ ( ११ ) गमिकश्रुत दृष्टिवाद है ॥ ( १२ ) अगमिकश्रुत आचारांगादि श्रुत हैं ॥ ( १३ ) अंगप्रविष्टश्रुत द्वादशाङ्ग सूत्र हैं ॥ ( १४ ) अनंगप्रविष्ट श्रुत अंगोंसे व्यतिरिक्त आवश्यकादि सूत्र है ॥ इनका पूर्ण वृत्तान्त नंदी आदि सिद्धान्तोंमेंसे जानना ॥

अवधि ज्ञानका यह लक्षण है कि जो प्रमाणवर्ती पदार्थों-को देखता है वा जो रूपि द्रव्य है उनके देखनेकी शक्ति रखता है जिसके सूत्रमें षट् भेद वर्णन किये गये हैं जैसेकि आनु-गामिक ( सदैव काल ही जीवके साथ रहनेवाले ) अनानु-गामिक ( जिस स्थानपे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है यदि वहां ही बैठा रहे तो जो इच्छा हो वही ज्ञानमें देख सकता है, जब वे ऊठ गया फिर कुछ नहीं देखता ) वृद्धिमान ( जो दिनप्रतिदिन वृद्धि होता है ) ह्रासमान ( जो हीन होनेवाला है ) प्रतिपाति ( जो होकर चला जाता है ) अप्रतिपाति ( जो होकर नहीं जाता है ) यह भेद अवधिज्ञानके हैं ॥ और मनःपर्यवज्ञान उ-सका नाम है जो मनकी पर्यायका भी ज्ञाता हो । इसके दो भेद हैं जैसेकि—ऋजुमति अर्थात् सार्द्ध द्वीपमें जो संज्ञि पंचिन्द्रिय जीव





ही नाम उपदेष्टरुचि है २ ॥ फिर जिसका राग द्वेष मोह अज्ञान  
 अवगत हो गया हो उस आत्माको आज्ञारुचि हो जाती  
 है ३ ॥ जिसको अंगसूत्रों वा अनंगसूत्रोंके पठन करनेसे स-  
 म्यक्त्व रत्न उपलब्ध होवे उसको सूत्ररुचि होती है अर्थात्  
 सूत्रोंके पठन करनेसे जो सम्यक्त्व रत्न प्राप्त हो जावे उसका ही  
 नाम सूत्ररुचि है ४ ॥ एक पदसे जिसको अनेक पदोंका बोध  
 हो जावे और सम्यक्त्व करके संयुक्त होवे पुनः जलमें तैलविंदु-  
 वत् जिसकी बुद्धिका विस्तार है उसका ही नाम बीजरुचि है  
 ५ ॥ जिसने श्रुतज्ञानको अंग सूत्रोंसे वा प्रकीर्णोंसे अथवा दृष्टि-  
 वादके अध्ययन करनेसे भली भांति जान लिया है अर्थात्  
 श्रुतज्ञानके पूर्ण आशयको प्राप्त हो गया है तिसका नाम अभि-  
 गम्यरुचि है ६ ॥ फिर सर्व द्रव्योंके जो भाव हैं वह सर्व  
 प्रमाणों द्वारा उपलब्ध हो गये हैं और सर्व नयोंके मार्ग भी जिसने  
 जान लिये हैं उसका ही नाम विस्ताररुचि है ७ ॥ और ज्ञान  
 दर्शन चारित्र्य तप विनय सत्य सामित गुप्तिमें जिसकी आत्मा  
 स्थित है सदाचारमें मग्न है उसका ही नाम क्रियारुचि है ८ ॥  
 जिसने परमतकी श्रद्धा नहीं ग्रहण की अपितु जिन शास्त्रोंमें  
 भी विशारद नहीं हैं किन्तु भद्रपरिणामयुक्त ऐसे जीवको  
 संक्षेपरुचि होती है ९ ॥ पद द्रव्योंका स्वरूप जिसने भालिभां-



( १०५ )

## ॥ तृतीय सर्गः ॥



### ॥ अथ चारित्र वर्णन ॥

आत्माको पवित्र करनेवाला, कर्ममलके दूर करनेके लिये सारवत्, मुक्तिरूपि मंदिरके आरुढ़ होनेके लिये निःश्रेणि समान, आभूषणोंके तुल्य आत्माको अलंकृत करनेवाला, पापकर्मोंके निरोध करनेके वास्ते अर्गल, निर्मल जल सदृश्य जीवको शीतल करनेवाला, नेत्रोंके समान मुक्तिमार्गके पथमें आधारभूत, समस्त प्राणी मात्रका द्वितीय श्री अर्धन् देवका प्रतिपादन किया हुआ तृतीय रत्न सम्यग् चारित्र है ॥ पित्रवरो ! यह रत्न जीवको अक्षय सुखकी प्राप्ति कर देता है । इसके आधारसे प्राणी अपना कल्याण कर लेते हैं सो भगवान्ने उक्त चारित्र मुनियों वा गृहस्थों दोनोंके लिये अत्युपयोगी प्रतिपादन किया है । मुनि धर्ममें चारित्रको सर्ववृत्ति माना गया है गृहस्थ धर्ममें देववृत्तिके नामसे प्रतिपादन किया है; सो मुनियोंके मुख्य पांच महाव्रत हैं जिनका स्वरूप विंचित् मात्र निम्न प्रकारसे लिखा जाता है, जैसेदि—



यथा—

मातेव सर्वभूतानां अहिंसा हितकारिणी ।

अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारणिः ॥ १ ॥

अहिंसा दुःखदावाग्नि प्रावृषेण्य घनावली ।

भवभ्रमिरुगार्त्तानामहिंसा परमौषधी ॥ २ ॥

दीर्घमायुः परंरूपमारोग्यं श्लाघनीयता ।

अहिंसा याः फलं सर्वं किपन्यत्कामदैवसा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—सज्जनों ! अहिंसा माताके समान सर्व जीवोंसे हित करनेवाली है और अमृतके समान आत्माको तृप्ति देनेवाली है और जो संसारमें दुःखरूपि दावाग्नि प्रचंड हो रही है उसके उपशम करने वास्ते मेघमालाके समान है । फिर जो भवभ्रमणरूपि महान् रोग है उसके लिये यह अहिंसा परमौषधी है तथा मित्रो ! जो दीर्घ आयु, नीरोग शरीर, यशका प्राप्त होना सौम्यभावका रहना अर्थात् जितने संसारी सुख हैं वे सर्व अहिंसाके ही द्वारा प्राप्त होते हैं । इस वास्ते सर्वज्ञ सर्वदर्शी अर्हन् भगवान् ने मुनियोंके लिये प्रथम व्रत अहिंसा ही वर्णन किया है, सो सर्व वृत्तिवाला जीव सर्वथा प्रकारसे हिंसाका परित्याग करे इसका नाम अहिंसा महाव्रत है ॥



हैं और सत्यके द्वारा ही पदार्थोंका निर्णय ठीक हो जाता है। अ-  
पितु सत्य द्रव्य गुण पर्यायों करके युक्त होना चाहिये। पूर्वषट्  
द्रव्योंका स्वरूप वा सत्य असत्य नित्यानित्य स्यादस्ति नास्ति  
आदि पदार्थोंका स्वरूप लिखा गया है उनके अनुसार भाषण  
करे तो भाव सत्य होता है, अन्यत्र द्रव्य सत्य है, सो महात्मा  
भाव सत्य वा द्रव्य सत्य अर्थात् सर्वथा प्रकारे ही सत्य भाषण  
करे वही महात्माओंका द्वितीय महाव्रत है ॥

### (३) सवाउ अदिन्नादाणाउ वेरमणं ॥

तृतीय महाव्रत चौर्य कर्मका तीन करणों तीन योगोंसे  
परित्याग करना है जैसेकि आप चोरी करे नहीं ( बिना दीए  
लेना ), औरोंसे करावे नहीं, चौर्यकर्म करताओंका अनुमोदन  
भी न करे, मन करके वचन करके काया करके, क्योंकि इस  
महाव्रतके धारण करनेवालोंको सदैव काल शान्ति, वृष्णाका  
निरोध, संतोष, आत्मज्ञान निरास्रव पदार्थों गतिकी इन पदार्थोंका  
भलिभान्तिसे बोध हो जाता है। और जो चौर्य कर्म करनेवालोंकी  
दगा होनी है जैसेकि अंगोंका छेदन वध दोर्भाग्य वीनदगा  
निर्लज्जता असंतोष परवस्तुओंको देखकर मनमें वस्तुपित भावोंका  
होना दोनों लोगोंमें दुःखोंका भोगना अविश्वानसात्र दनना





मीको वृद्ध अवस्था भी शीघ्र ही घेर लेती है; मृत्युका मूल है  
 कामी जन शीघ्र ही मृत्युके मुखमें प्राप्त हो जाते हैं तथा कामि-  
 योंकी संतति भी (संतान) शीघ्र ही नाश हो जाती है, क्योंकि  
 जिनके मातापिता ब्रह्मचर्यसे पतित हुए गर्भाधान संस्कारमें  
 प्रवृत्त होते हैं वे अपने पुत्रोंके प्रायः जन्म संसारके साथ ही  
 मृत्यु संस्कार भी कर देते हैं तथा यदि मृत्यु संस्कार  
 न हुआ तो वे पुत्र शक्तिहीन दौर्भाग्य मुख कान्ति-  
 हीन आलस्य करके युक्त दुष्ट कर्मोंमें विशेष करके प्रवृ-  
 त्तमान होते हैं। यह सर्व मैथुनवर्मके ही महात्म्य है तथा इस  
 कर्मके द्वारा विशेष रोगोंकी प्राप्ति होती है जैसेकि राजय-  
 क्ष्मादि रोग हैं वे अतीव विषयसे ही प्रादुर्भूत होते हैं और  
 कास श्वास ज्वर नेत्रपीडा कर्णपीडा हृदयशूल निर्वलता  
 अजीर्णता इत्यादि रोगों द्वारा इस परम पवित्र शरीर विषयी  
 लोग नाश कर बैठने हैं। कइयोंको तो इसकी कृपासे अंग छेद-  
 नादि कर्म भी करने पड़ने हैं। पुनः यह कर्म लोग निन्दनीय  
 वध बंधका मूल है परम अधर्म है चित्तको भ्रममें करनेवाला  
 है दर्शन चारित्र्यरूपि घरको ताला लगानेवाला है बैरके करने-  
 वाला है अपमानके देनेवाला है दुर्नामके स्थापन करनेवाला है।  
 अपितु इस कामरूपि जलमे आजर्पयन्त इन्द्र, देव, चक्रवर्ती वायु-



कपाट होते हैं तथावत् ब्रह्मचर्य आत्मज्ञानकी रक्षा करने-  
वाला है। अपितु जिस प्रकार शिरके छेदन हो जानेपर  
कटि मूजादि अवयव कार्यसाधक नहीं हो सक्ते इसी  
प्रकार ब्रह्मचर्यके भंग होनेपर और व्रत भी भंग हो जाते हैं।  
फिर ब्रह्मचर्य सर्व गुणोंको उत्पादन करता है। अन्य व्रतोंको  
इसी प्रकारसे सुशोभित करता है जैसे तारोंको चन्द्र आभूषणोंको  
सुहृद् वस्त्रोंको कपासका वस्त्र पुष्पोंको अरविन्द पुष्प वृक्षोंको चं-  
दन सभाओंको स्वयंभीसभा दानोंको अभयदान झानोंको केव-  
ल झान मुनियोंको तीर्थंकर वनोंको नंदनवन। जैसे यह वस्तुयें  
अन्य वस्तुओंको सुशोभित करती हैं इसी प्रकार अन्य नियमोंको  
ब्रह्मचर्य भी सुशोभित करता है क्योंकि एक ब्रह्मचर्यके पूर्ण  
आसेवन करनेसे अन्य नियम भी सुखपूर्वक सेवन किए जा सक्ते  
हैं। फिर जिसने इसको धारण किया वे हो ब्राह्मण है मुनि है  
ऋषि है साधु है भिक्षु है और इसीके द्वारा सर्व प्रकारकी सु-  
खोंकी प्राप्ति है ॥

यथा-

प्राणभूतं चरित्रस्य परब्रह्मैक कारणम् ॥

सनाचरन् ब्रह्मचर्यं प्राणैरसि पृथगे ॥ १ ॥



( ११५ )

होते हैं, तथा जो इस पवित्र ब्रह्मचर्य रत्नको प्रीतिपूर्वक आ-  
सेवन नहीं करते हैं तथा इससे पराङ्मुख रहते हैं, उनकी नि-  
प्रकारसे गति होती है ॥

यथा—

कम्पः स्वेदः श्रमो मूर्च्छा, भ्रमिर्ग्लानिर्वक्षयः ॥

राजयक्ष्मादि रोगाश्च, भवेयुर्मैथुनोत्थिताः ॥ १ ॥

अर्थः—कम्प स्वेदं ( पसीना ) यकावट मूर्च्छा भ्र-  
ग्लानि बलका क्षय राजयक्ष्मादि रोग यह सर्व मैथुनी पुरुषोंकी ही  
उत्पन्न होते हैं, इस लिये सत्य विद्याके ग्रहण करनेके लिये  
आत्मतत्त्वको प्रगट करनेके वास्ते और समाधिकी इच्छा रख-  
ता हुआ इस ब्रह्मचर्य महाव्रतको धारण करे यही मुनियोगी  
चतुर्थे महाव्रत है, और सर्व प्रकारके सुख देनेवाला है ॥

तवाउ परिगहाउ बेरमाण ॥

सर्वथा प्रकारसे परिश्रमसे निश्चिन्ता करना तीन वर्षों  
तीन योगोंसे बरी पंचम महाव्रत है, क्योंकि इन परिश्रमके ही  
प्रतापसे आत्मा सदैवकाल दुःखित मोक्षारुण रहता है, और  
संसारचक्रमें नाना प्रकारकी पीड़ाओंको मान होता है । पुनः



इसकी दानी हो जाती है अर्थात् लाभकी इच्छा करता हुआ व्यय हो जाता है, और इसके वास्ते दीन वचन बोलते हैं, नीचैकी सेवा की जाती है अर्थात् ऐसा कौनसा दुःख है जो परिग्रहकी आशावान्को नहीं प्राप्त होता ? चित्तके संकल्प मनकी पीड़ाओंको भी येही उत्पन्न करता है, इसलिये सूत्रोंमें लिखा है कि ( मुच्छा परिग्रहो बुतो ) मूर्च्छाका नाम ही परिग्रह है । सो मुनि किसी भी पदार्थ पर ममत्व भाव न करे और शुद्ध भावोंके साथ पंचम महाव्रतको धारण करे, और अपात्रिह होकर पापोंसे मुक्त होवे, माणि मोती आदि पदार्थोंको वा ठुणादिको सम शात करे और मान अपमानको भी सम्यक् प्रकारसे सहन करे, सर्व जीवोंमें सम्भाव रखदे, अपितु सर्व जीवोंका हितैषी होता हुआ संसारमें विह्वल होवे । और अहम्भकारके कर्मोंके क्षय करनेमें वृत्तन जिसके मन बचन वाया शुभ है, सुख दुःखमें एवं विपदाद रहित है, स नि बरके सुक्त है, वा दान्त है, जिसको शंकाही नां राग द्वेष आदि रंग अपना पण प्राप्त नहीं कर सता, जिसके चन्द्रवत् मैत्र्य भाव है और दर्पणवत् हृदय रहित है, और शुद्ध स्थानोंमें निवास निवास है, इत्यादि सुवर्ण ही मुनि इन लक्षणों से रूप कर सता है ।





हृनि पांच महाव्रत पट्टम रात्रीभोजनरूप व्रतको धारण करे ॥

अपितु भावनाओं द्वारा भी महाव्रतोंको शुद्ध करता रहे क्योंकि प्रत्येक २ महाव्रतकी पांच २ भावनायें हैं। भावना उसे कहते हैं जिनके द्वारा पांच महाव्रत सुखपूर्वक निर्वाह होते हैं, जो भी विघ्न उपस्थित नहीं होता, सदैव काल ही चित्तके भाव प्रतीके पालनेमें लगे रहते हैं ॥ सो भावनाओंका स्वरूप निम्न प्रकारमें है ॥

### प्रथम महाव्रतकी पांच भावनायें ॥

प्रथम भावना—महाव्रतके धारक मुनि जीवरत्नाके वास्ते दिना रत्न उठ बैठ गमणागमण कदापि न करें और नाटि विणी आत्माजी निंदा करें क्योंकि निंदादि करनेसे उन आत्माओंको पीड़ा होती है, पीड़ा होनेसे महाव्रतवा शुद्ध रहना कठिन हो जाता है ॥

द्वितीय भावना—मनकी दशमें रहना और हिंसादि सुन मन कदापि भी धारण न करना अर्थात् मनके द्वारा निर्मोहि

होना ॥

तृतीय भावना—

चतुर्थ भावना—

पंचम भावना—







चतुर्थ भावना—जो आहार पाणी सर्व साधुओंका भाग युक्त है वे गुरुकी विना आज्ञा न आसेवन करे क्योंकि गुरु सर्वके स्वामी है वही आज्ञा दे सकते हैं अन्यत्र नहीं ॥

पंचम भावना—गुरु तपस्वी स्थविर इत्यादि सर्वकी विनय करे और विनयसे ही सूत्रार्थ सीखे क्योंकि विनय ही परम तप है विनय ही परम धर्म है और विनयसे ही ज्ञान सीखा हुआ फलीभूत होता है और तृतीय व्रतकी रक्षा भी सुगमतासे हो जाती है, इसलिये तृतीय महाव्रत भावनायें युक्त ग्रहण करे ॥

चतुर्थ महाव्रतकी पंच ज्ञावनायें ॥

प्रथम भावना—ब्रह्मचर्यकी रक्षा वास्ते अलंकार वर्जित उपाश्रय सेवन करे क्योंकि जिस वस्तीमें अलंकारादि होते हैं उस वस्तीमें मनका विभ्रम हो जाना स्वाभाविक धर्म है, सो वस्ती वही आसेवन करे जिसमें मनको विभ्रम न उत्पन्न हो ॥

द्वितीय भावना—स्त्रियोंकी सभामें विचित्र प्रकारकी कथा न करे तथा स्त्री कथा कामजन्य, मोहको उत्पन्न करनेवाली यथा स्त्रीके अवयवोंका वर्णन जिसके श्रवण करनेसे वक्ता श्रोतों सर्व ही मोहसे आहुल हो जाये इस प्रकारकी कथा ब्रह्मचारी कदापि न करे ॥



कदापि भी न करे क्योंकि शब्दोंका इंद्रियमें प्रविष्ट होनेका धर्म है । यदि रागद्वेष किया गया तो अवश्य ही कर्मोंका बंधन हो जायगा, इसलिये शब्दोंको छुनकर शान्ति भाव रखे ॥

द्वितीय भावना—मनोहर वा भयाणक रूपोंको भी देखकर रागद्वेष न करे अर्थात् चक्षुरिन्द्रिय वशमें करे ॥

तृतीय भावना—सुगंध—दुर्गंधके भी स्पर्शमान होने पर रागद्वेष न करे अपितु घ्राणेन्द्रिय वशमें करे ॥

चतुर्थ भावना—मधुर भोजन वा तिक्त रसादियुक्त भोजन-के मिलनेपर रसेन्द्रियको वशमें करे अर्थात् सुंदर रसके मिल-नेसे राग कटुक आदि मिलने पर द्वेष मुनि न करे ॥

पंचम भावना—सुस्पर्श वा दुःस्पर्शके होनेसे भी रागद्वेष न करे अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय वशमें करे ॥

सो यह \*पंचवीस भावनाओं करके पंच महाव्रतोंको धारण करता हुआ दश प्रकारके मुनिधर्मको ग्रहण करे ॥ यथा—

दसविहे सम्मण धम्मो पं. तं. खंती

\* पंचवीस भावनाओंका पूर्ण स्वरूप श्री आचाराङ्ग सूत्र श्री समवायाङ्ग सूत्र वा श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रसे देख लेना ॥





कर दान देवे अर्थात् साधुओंकी वैयाहृत्य करे ९ ॥ और मन वचन कायासे शुद्ध ब्रह्मचर्य ब्रतको पाळन करे जैसेकि पूर्व लिखा जा चुका है १० ॥ ब्रह्मचर्यकी रक्षा तपसे होती है सो तप 'द्वादश मकारसे वर्णन किया गया है ॥ यथा-

(१) व्रतोपचासादि करने या आयुष्यर्धन्त अनशन करना,  
 (२) स्वल्प आहार आसेवन करना, (३) भिक्षाचरीको जाना,  
 (४) रमाँका परित्याग करना, ( ५ ) केशलुंचनादि क्रियायें,  
 ( ६ ) इन्द्रियें दमन करना, ( ७ ) दोष लगनेपर गुर्वादिके  
 पाम निधिपूर्वक आलोचना करके प्रायश्चित्त धारण करना,  
 ( ८ ) और जिनाहानुकूल विनय करना, ( ९ ) वैयाहृत्य  
 ( सेवा ) करना, ( १० ) पितर रक्षाध्याय ( पठनादि ) तप  
 करना, ( ११ ) अपितु आर्तध्यान रौद्रध्यानका परित्याग  
 करके धर्मध्यान सुतध्यानका आसेवन करना, ( १२ ) अपने  
 शरीरका परित्याग करके ध्यानमें ही मग्न हो जाना । इन्द्रि-  
 द्वादश मकारसे तपको पाळन करता हुआ तपसे ब्रह्मचर्य-  
 को शान्तिपूर्वक मरन है ॥ उमेवि-





















अणादिय अप्पज्जवसिय से वत्थेणं ज्ञंते किं  
 सादिए सपज्जवसिय चउभंगो गो० वत्थे सा-  
 दिय सपज्जवसिय अवसेस्य तिण्हिविपन्तिसे-  
 हियवा जहाणं ज्ञंते वत्थे सादिय सपज्जवसिय  
 नो अणादिय अप्प० नो अणादिय सपज्ज० नो  
 अणादिय अप्पज्ज० तद्वा जीवा किं सादिया  
 सपज्जवसिया चोन्नंगो पुच्छा गोयमा अत्थे० सा-  
 दियाअचत्तारि विज्जाणियवा से गो० नेरइ  
 यतिरिक्खजोणिय मणुस्सदेवा गइरागइं पगुच्च  
 सादिया सपज्जवसीता सिल्लिगइं पगुच्च सादिए  
 अपज्जवसिया जवसिल्लिगइं पगुच्च अणादिया  
 सपज्जवसिया अज्जवसिल्लिया संतारं पगुच्च अ-  
 णादिया अप्पज्जवसिया ॥ जगवती नृत्त गतव  
 ६ उदेश ३ ॥

भाष्यः—अथ नैवम मरुती अथ मरुते मरु एवमेव  
 वि हे मरुतः' अथ मरुते मरुते मरुते मरुते मरुते मरुते



है इस कारणसे हे गौतम ! कतिपय जीवोंके साथ कर्मोंका सम्बन्ध सादि सान्तादि कहा जाता है ॥ श्री गौतमजी पुनः पूछे हैं कि हे भगवन् ! जो वस्तु है क्या वे सादि सान्त-है वा अनादि-सान्त है तथा सादि अनंत है वा अनादि अनंत है ? श्री भगवान् उत्तर देते हैं कि हे गौतम ! वस्तु सादि सान्त ही है किन्तु अन्य भंग वस्त्वमें नहीं है ॥

श्री गौतमजी—यदि वस्तु सादि सान्त पदवाचा है और भंगोंसे वर्जित है तो हे भगवन् ! जीव क्या सादि सान्त हैं वा अनादि सान्त हैं तथा सादि अनंत हैं वा अनादि अनंत हैं ?

श्री भगवान्—कतिपय जीव सादि सान्त पदवाले हैं, और कतिपय अनादि सान्त पदवाले हैं, अपितु कतिपय सादि अनंत पदवाले भी हैं और कतिपय अनादि अनंत पदवाले भी हैं ॥

श्री गौतमजी—यह कथन किस प्रकारसे सिद्ध है अर्थात् इसमें उदाहरण क्या क्या है ?

श्री भगवान्—हे गौतम ! नारकी निर्पक्व मनुष्य देव इन योनियोंमें जो जीव परिभ्रमण करते हैं उन अनेका ( गन्ता-गतिकी ) जीव सादि सान्त पदवाले हैं क्योंकि जैसे मनुष्य योनिमें कोई जीव आया तो उसकी नादि है, अपितु जिस

समय मृत्युको प्राप्त होगा उस समय मनुष्य योनिका उस जीव अपेक्षा अंत होगा । इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना । और सिद्ध गतिही अपेक्षा जीव सादि अनंत हैं, किन्तु भव्य सिद्ध छवि अपेक्षा जीव अनादि सान्त हैं, अभव्य जीव अपेक्षा अनादि अनंत हैं ॥ सो भव्य जीवोंके कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यार्थिक नयापेक्षा अनादि अनंत है और पर्यायार्थिक नयापेक्षा सादि सान्त हैं ॥ सो अष्ट कर्मोंके बंधनोंको छेदन करके जैसे अलातुं (तूंग) मृत्तिकाके वा रज्जुओंके बंधनोंको छेदन करके जलके उपरि भागमें आ जाता है इसी प्रकार आत्मा कर्मोंसे रहित हो कर मोक्षमें विराजमान हो जाता है ॥ सो मुनिधर्मको सम्यग् प्रकारसे पाळण करके सादि अनंत पदयुक्त होना चाहिये, इसका ही नाम सर्व चारित्र है ॥

इति तृतीय सर्ग समाप्त ॥

## ॥ चतुर्थ सर्गः ॥

### ॥ अथ गृहस्थ धर्म विषय ॥

और गृहस्थ लोगोंका देशवृत्ति धर्म है क्योंकि गृहस्थ लोग सर्वथा प्रकारसे तो वृत्ति छोड़ी नहीं मत्ते हम लिये श्री भगवान् ने गृहस्थ लोगोंके लिये देशवृत्तिरूप धर्म प्रतिपादन किया है। तो गृहस्थ धर्मका मूल सम्यक्त्व है जिसका अर्थ है कि शुद्ध देव शुद्ध गुरु शुद्ध धर्मकी परीक्षा करना, फिर परीक्षाओं द्वारा उनको धारण करना, फिर तीन रत्नोंको भी धारण करना, न्यायसे कभी भी पराङ्मुख न होना वरन् वे शास्त्र लोगोंका मुख्य कृत्य न्याय ही है, और अपने माता पिता भगिनी भार्या मातृ शत्यादि सम्बन्धियोंके कर्त्तव्योंको भी जानना और कभी भी सम्बन्धसे दूर न रहना। देखिये श्री शान्तिस्कन्धकी तीर्थवर देव न्यायसे पर श्रद्धा राख्य पावन करने फिर तीर्थवर पदों प्राप्त करने मोक्ष हो गये है। इन प्रकार शत्रु पराजय भी पर श्रद्धा राख्य भोग कर फिर होशियार हुए। इससे सिद्ध है कि शास्त्र लोगोंका मुख्य कर्त्तव्य न्याय ही है और न्यायसे फिर श्रद्धा रखनी इनकी शान्ति देवी है और























और अन्य पुरुषोंको असत्य उपदेश करना ४ । तथा असत्य ही देख लिखने ५ । इन पांच ही अतिचारोंको त्याग करके द्वितीय व्रत शुद्ध ग्रहण करे ॥

तृतीय अनुव्रत विषय ॥

**शुलाभ अदिन्नादाणाञ्चो वेरमणं ॥**

तृतीय अनुव्रत स्थूल चोरीका परित्यागरूप है जैसेकि ताला पडि कूची, गांठ छेदन करना, किसीकी भित्ति तोड़ना, मार्गोंमें लूटना, डांके मारने; क्योंकि यह ऐसा निंदनीय कर्म है कि दोनों जगोंमें भयाणक दशा करनेवाला है और इसके द्वारा वधकी प्राप्ति होना तो स्वाभाविक बात है ॥ फिर इस कर्म कर्ताओंके दया तो रही नहीं सकि, सब मित्र उसीके ही शत्रु रूप बन जाते हैं और इस कर्मके द्वारा प्राणि अनेक कष्टोंको भोगते हैं, इस लिये तृतीय व्रतके धारण करनेवाला गृहस्थ पांच अतिचारोंका भी परिहार करे जैसेकि—

तेणाहमे १ तकर पजगे २ विरुद्ध रज्जा-  
श्कम्मे ३ कूड़ तोले कूड़ माणि ४ तप्पनिरुवग  
ववहारे ५ ॥



भक्तता देनेवाला है और उभय लोगमें यशमद है । इसके धारण करनेवाले आत्मा स्व स्वरूप, वा पर स्वरूपके पूर्ण वेत्ता होते हैं । अपितु गृहस्थ लोगोंको पूर्ण ब्रह्मचारी होना परम कठिन है, इसी वास्ते अर्हन् देवने व्यभिचारके बंध करनेके वास्ते गृहस्थ लोगोंका स्वदार संतोष व्रत प्रतिपादन किया है अर्थात् अपनी स्त्री वर्जके शेष स्त्रियों भगिनी वा मातृवत् जानना ऐसे बतलाया है । और स्त्रियोंके लिये भी स्वपति संतोष व्रत है; अपितु इतना ही नहीं, अपनी स्त्री पर भी मूर्च्छित न होना, परस्त्रियोंका कभी भी चिंतन न करना और अपनी स्त्री पर ही संतोष करना । सो इस व्रतके भी पांच अतिचार हैं, जैसेकि—

इत्तरिय परिगृह्य गमणे अप्परिगृह्य गमणे अणंग कीडा परविवाह करणे कामभोग तिष्ठान्निदासे ॥

भाषार्थः—स्वस्त्रीः यदि लघु व्यवस्थाकी हो क्योंकि किसी

प्रथम अतिचारका अर्थ ऐसे भी लिखा हुआ है कि परस्त्रीके स्तोवकाल पर्यन्त अपनी स्त्री को न देखे । द्वितीय अतिचारका अर्थ विधवा वा वेश्याके सम्बन्ध न करना । तृतीयका अर्थ परसे भिन्न अदि करने । परंतु ये पञ्च अपर्याप्त मैरुत्तरादी महाराजने उक्त निम्ने हुए ही अर्थ दिये हैं ॥

कारण वशात् लघु व्यवस्थामें ही विवाह हो गया तो लघु व्यवस्थायुक्त स्त्रीके साथ संभोग न करे, यदि करे तो प्रथम अतिचार है १ । अथवा यदि उपविवाह हुआ उसके साथ संग करना जिसको मांगना कहने हैं २ । कुचेष्टा करना अर्थात् कामके वशीभूत होकर कुचेष्टा द्वारा वीर्यपात करना ३ । तथा परका मांगना किया हुआ उसको आप ग्रहण करना ( उपविवाहको ) ४ । और कामभोगकी तीव्र अभिलाषा रखनी ५ । इन पाँच ही अतिचारोंको त्यागके चतुर्थ स्वदार संतोषी व्रतको शुद्धताके साथ धारण करे क्योंकि यह व्रत परम आल्हाद भावको उत्पन्न करनेहारा है ॥ फिर पंचम अनुव्रतको धारण करे जैसेकि—

इच्छा परिमाण व्रत विषय ॥

इच्छा परिमाणे ॥

मित्रवरो ! तृष्णा अनन्ती है, इसका कोई भी थाह नहीं मिलता । इच्छाके वशीभूत होते हुए प्राणी अनेक संकटोंका सामना करते हैं, रात्री दिन इसकी ही चिंतामें लगे रहते हैं, इसके लिये कार्य अकार्य करते लज्जा नहीं पाते और अयोग्य कामोंके लिये भी उद्यत हो जाते हैं, परंतु इच्छा फिर भी पूर्ण

भी होती। अनेक राजे महाराजे चक्रवर्ती आदि भी इस वृष्णा  
 नदीसे पार न हुए और किसीके साथ भी यह लक्ष्मी  
 न मिली। यदि यों कहा जाय तो अत्युक्ति न होगा कि वृष्णाके  
 लक्ष्मी ही प्राणी सर्व प्रकारसे और सर्व ओरसे दुःखोंका अ-  
 नाश करते हैं ॥ इस लिये वृष्णा रूपी नदीसे पार होनेके लिये  
 रानी रूपी सेतु ( सेतुपुल ) बांधना चाहिये अर्थात् इच्छा-  
 का परिमाण होना चाहिये । जब परिमाण किया गया तब ही  
 अनुव्रत सिद्ध हो गया । इसी वास्ते श्री सर्वज्ञ प्रभुने दुःखों-  
 के दूर करनेके वास्ते आत्माको सदैवकाल आनंद रहनेके वास्ते  
 अनुव्रत इच्छा परिमाण प्रतिपादन किया है, जिसका  
 अर्थ है कि इच्छाका परिमाण करे, आगे वृद्धि न करे ॥ और  
 इन बातोंके भी पांच ही अतिचार हैं, जैसेकि—

खेत्त वत्थु प्यमाणातिक्रम्मे हिरण्य सुवर्ण  
 प्यमाणातिक्रम्मे दुष्पय चउप्पय प्यमाणाति-  
 क्रम्मे धरण धाएण प्यमाणातिक्रम्मे कुविय धात  
 प्यमाणातिक्रम्मे ॥

भाषार्थ—क्षेत्र, वस्तु ( घर हाट ) के परिमाणको अति-

क्रम करना, हिरण्य सुवर्णके परिमाणको अतिक्रम करना, द्विपाद ( मनुष्यादि ) चतुष्पाद ( पशवादिके ) के परिमाणको अतिक्रम करना, और घन धान्यके परिमाणको अतिक्रम करना, फिर घरके उपकर्णके परिमाणको अतिक्रम करना वही पंचम अनुव्रतके अतिचार हैं अर्थात् जितना जिस वस्तुका परिमाण किया हो उनको उल्लंघन करना वही अतिचार हैं; इस लिये अतिचारोंको वर्जके पंचम अनुव्रत शुद्ध पालन करे ॥

और षष्ठम, सप्तम, अष्टम, इन तीनों व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं क्योंकि यह तीन गुणव्रत पांच ही अनुव्रतोंको गुणकारी हैं, और पांच ही अनुव्रत इनके द्वारा सुरक्षित होते हैं ॥

अथ प्रथम गुण व्रत विषय ॥

### दिग्व्रत ॥

सुयोग्य पाठक गण ! प्रथम गुणव्रतका नाम दिग्व्रत है जिसका अर्थ यह है कि दिशाओंका परिमाण करना, जैसेकि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, उर्ध्व, अधो, इन दिशाओंमें स्वच्छ या करके गमन करनेका परिमाण करना । और पांच आस्रव सेवनका परित्याग करना क्योंकि जितनी मर्यादा करेगा उतना ही आस्रव निरोध होगा । सो इस व्रत के भी पांच ही अतिचार हैं जैसेकि—

उह दिसि प्यमाणातिक्रमे अहो दिसि  
 प्यमाणाइक्कमे तिरिय दिसि प्यमाणाइक्कमे  
 सेत बुद्धि सञ्चंतरद्धा ।

भाषार्थ:-उर्ध्व दिशिका प्रमाण अतिक्रम करना १ अथो  
 दिशिका प्रमाण अतिक्रम करना २ तिरिय दिशिका प्रमाण अति-  
 क्रम करना ३ क्षेत्रकी दृष्टि करना जैसेकि कल्पना करो कि  
 किमं गृहस्थने चारों ओर शत ( सौ २ ) योजन प्रमाण क्षेत्र  
 बना हुआ है । फिर ऐसे न करे कि पूर्वकी ओर १५०  
 योजन प्रमाण कर लूं और दक्षिणकी ओर ९० योजन ही रहने  
 देंगे कि दक्षिणमें मुझे काम नहीं पड़ता पूर्वमें अधिक काम  
 पड़ता है यह भी अविचार है ४ । और पंचम अविचार यह है  
 कि किमं प्रमाणयुक्त भूमिमें संदेह उत्पन्न हो गया कि  
 कहां में इतना क्षेत्र प्रमाण युक्त आ गया हूं सो मंशपमें ही  
 कि गमन करना यही पांचमा अविचार है अर्थात् पांचों ही  
 अविचारोंकी वर्जके प्रथम गुणव्रत शुद्ध ग्रहण करना चाहिये ॥

भोग परिभोग परिमारे ।

जो वस्तु एक बार भोगनेमें आवे तथा जो वस्तु बारम्बार



भोगनेमें आवे उसका परिमाण करना सो ही द्वितीय गुणव्रत है, सो इस व्रतके अंतरगत ही पद्भिन्नाति वस्तुओंका परिमाण अवश्य करना चाहिये, जैसेकि—

१ उल्लगियाविहं—स्नानके पश्चात् शरीरके पूँछनेवाले वस्त्रका परिमाण करना तथा जितने वस्त्र रखने हों ।

२ दंतणविहं—दांत प्रक्षाळण अर्थे दांतुनका परिमाण करना ।

३ फलविहं—केशादि धोवनके वास्ते फलोंका परिमाण करना

४ अभंगणविहं—तैलादिका प्रमाण अर्थात् शरीरके मर्दव वास्ते ।

५ उवट्टणविहं—शरीरकी पुष्टि वास्ते उवट्टनका परिमाण ।

६ मज्जनविहं—स्नानका परिमाण गणन संख्या वा पाणीका परिमाण ।

७ वत्थविहं—वस्त्रोंका प्रमाण अर्थात् वस्त्रोंकी जाति संख्या गणन संख्या ।

८ विलेवणविहं—चंदनादि विलेपनका परिमाण ।

९ पुष्पाविहं—शरीरके परिभोगनार्थे पुष्पोंका परिमाण ।



२३ पाहणिविहं—पादरक्षकका परिमाण अर्थात् जूती आदिका परिमाण करना ।

२४ सयणविहं—शय्याका परिमाण अर्थात् वस्त्रोंकी गणन संख्या अथवा शय्यादि स्पर्श करना वा पल्यंकादिका परिमाण ।

२५ सचित्तविहं—सचित्त वस्तुओंका परिमाण अर्थात् पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति इत्यादि सचित्त वस्तुओंका परिमाण ।

२६ दरवविहं—द्रव्योंका परिमाण अर्थात् भिन्न २ वस्तुओंका नाम लेकर परिमाण करना । जैसे किसीने ५ द्रव्य रखें तो जल १ पूषा ( रोटी ) २ दाल ३ शाक ४ दुग्ध ५ । इसी प्रकार अन्य द्रव्योंका परिमाण भी जान लेना चाहिये । तात्पर्य यह है कि बिना परिमाण कोई भी वस्तु ग्रहण करनी न चाहिये । सो इसके भी पांच ही अतिचार हैं, जैसेकि—

सचित्ताहारे सचित्त पडिवद्धाहारे अप्पो-  
लिउसही नक्खणया डुप्पोलउसही नक्ख-  
णया तुच्छोसही नक्खणया ॥

भाषार्थः—सचित्त वस्तुका परित्याग होने पर यह अति-  
चार भी वर्ज्य, जैसेकि सचित्त वस्तुका आहार ? सचित्त प्राप्ति

१ दूरी आहार २ अपक आहार ३ दुःपक आहार ४ तुच्छोप-  
निक आहार ५ ॥ इन पांच ही आतिचारोंको वर्जक फिर १५  
स्नानोंका भी परित्याग करे क्योंकि पंचदश कर्म ऐसे हैं  
जिनके करनेसे महा कर्मोंका बंध होता है। सो गृहस्थोंको जानने  
योग्य है अपितु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, जैसे कि—

१ अङ्गारकम्मे—कौलादिका व्यापार ।

२ वणकम्मे—वन वटवाना क्योंकि यह कर्म महा निर्दय-  
ताका है ।

३ साडीकम्मे—शकट ( गाढ़े ) करवाके बेचने ।

४ भाडीकम्मे—पशुओंको भाटेपर देना क्योंकि इस कर्म  
करनेवालोंको पशुओंपर दया नहीं रहती ।

५ फोटीकम्मे—पृथ्वी आदिका स्फोटक कर्म जैसे कि  
शिलादि तोड़ना वा पर्वत आदिषो ।

६ दंस्तदणिले—दस्ती आदिसे दांजोंका दणिल बनना ।

७ लखवदणिले—लखवा दणिल तथा मजीरावा व्या-  
पार करना ॥

८ रसदणिले—रसोवा दणिल बनना जैसेकि घृत, नेत्र,  
गुन, मदिरादि ॥

९ बेसदणिले—बेसोवा दणिल बनना तथा बेस रसदणिले  
अंतरगत ही मनुष्य विधि पर निरुद्ध होती है ।

१० विसवणिजे-विपत्ती निश्रियता करनी क्योंकि यह कृत्य महा कर्मोंके बंधका स्थान है और आशीर्वादका तो यह प्रायः नाश ही करनेवाला है ॥

११ जंतपीलणियाकम्मे-यंत्र पीड़न कर्म जैसे कि कोलु ईख पीड़नादि कर्म हैं ।

१२ निळञ्छणियाकम्मे-पशुओंको नपुंसक करना वा अवयवोंका छेदन भेदन करना ॥

१३ दवगिदावणियाकम्मे-वनकों अग्नि लगाना तथा द्वेषके कारण अन्य स्थानोंको भी अग्निद्वारा दाह करना इत्यादि कृत्य सर्व उक्त कर्ममें ही गार्भित हैं ॥

१४ सर दह तलाव सोसणियाकम्मे-जलाशयोंके जलको शोषित करना, इस कर्मसे जो जीव जलके आश्रयभूत हैं वा जो जीव जलसे निर्वाह करते हैं उन सबोंको दुःख पहुँचता है और निर्दयता बढ़ती है ॥

१५ असइजणपोसणियाकम्मे-हिंसक जीवोंकी पालना करना हिंसाके लिये जैसेकि-मार्जारका पोषण करना मूषकों ( उंदर ) के लिये, श्वानोंकी प्रतिपालना करना जीववधके लिए और हिंसक जीवोंसे व्यापार करना वह भी इसी कर्ममें गार्भित है, सो यह कर्म गृहस्थोंको अवश्य ही त्याज्य हैं । जो आर्यकर्म



हिंसाकारी पदार्थोंका दान करना जैसे—शस्त्रदान, अग्निदान, और ऊखल मूमलदान इत्यादि दानोंसे हिंसाकी प्रवृत्ति होती है, सुकर्मकी अरुचि हो जाती है । और चतुर्थ कर्म अन्य आत्माओंको पाप कर्ममें नियुक्त करना, सो यह कर्म कदापि आसेवन न करने चाहिए । फिर इस तृतीय गुणव्रतकी रक्षाके लिए पांच अतिचारोंको भी छोड़ना चाहिए जो निम्न प्रकारसे हैं ॥

कंदप्पे १ कुकुइए २ मोहरिए ३ संजुत्ताहि  
गरणे ४ उवज्जोग परिज्जोग अइरित्ते ५ ॥

भाषार्थ—कामजन्य वार्त्ताओंका करना १ और कुचेष्टा करना तथा साँग होरी आदिमें उपहास्यजन्य कार्य करने २ असंबद्ध वचन भाषण करने तथा धर्मयुक्त वचन बोलने ३ प्रमाणसे अधिक उपकरण वा शस्त्रादिका संचय करना ४ जो वस्तु एक बार आसेवन करनेमें आवे अथवा जो वस्तु पुनः २ ग्रहण करनेमें आवे उनका प्रमाणसे अधिक संचय करना अथवा प्रमाणयुक्त वस्तुमें अत्यन्त मूर्च्छित हो जाना । यह पांच ही अतिचार छोड़ने चाहिए, क्योंकि इन दोषोंके द्वारा व्रत कलंकित हो जाते हैं और निर्जराका मार्ग ही बंध हो जाता है, सो बिना निर्जराके मोक्ष नहीं अपितु मुक्तिके लिए श्री

नहीं देवने चार शिक्षाव्रत प्रतिपादन किए हैं जिनमें प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक है ॥

अथ सामायिक प्रथम शिक्षाव्रत विषय ॥

जो जीवोंको अतीव १ पुण्योदयसे मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है उसको सफल करनेके लिये दोनों समय सामायिक करना चाहिए ॥ स्वयं-आय-द्वक-इन की संधि करनेमें

१ नवविहे पुण्ये २ तं. अन्तपुण्ये ३ पाणपुण्ये ४ व्रतपुण्ये ५ लेणपुण्ये ६ मयणपुण्ये ७ मणपुण्ये ८ दयपुण्ये ९ अयपुण्ये १० नमोदानपुण्ये ११ ॥ टाणाग सू० ३५० ५ ॥



सामायिक शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ यह है कि आत्माको शान्ति मार्गमें आरूढ़ करना वा जिसके करनेसे शान्तिकी प्राप्ति होवे उसीका नाम सामायिक है । सो इस प्रकारसे भाव सामायिकको दोनों काल करे । फिर प्रातःकाल, और सन्ध्याकालमें सामायिककी पूर्ण विधिको भलि भांतिसे करता हुआ सामायिक सूत्रको पठन करके इस प्रकारसे विचार करे कि यह मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, केवल कर्मोंके अंतरसे ही इसकी नाना प्रकारकी पर्याय हो रही है और अनादि काल के कर्मोंके संगसे इस प्राणीने अनंत जन्म मरण किये हैं । फिर पुनः २ दुःखरूपि दावानलमें इस प्राणीने परम कष्टोंको सहन किया है, और तृष्णाके वशमें होता हुआ अवृत्त ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है । सो ऐसे परम दुःखरूप संसार चक्रसे विमुक्त होनेका मार्ग केवल सम्यग् ज्ञान सम्यग् दर्शन सम्यग् चारित्र ही है । सो जब प्राणी आस्रवके मार्गोंको बंध करता है और आत्माको अपने वशमें कर लेता है, तब ही कर्मोंके बंधनोंसे विमुक्त हो जाता है । सो इस प्रकारके सद् विचारोंके द्वारा सामायिक कालको परिपूर्ण करे । अपितु सामायिक रूप व्रत दो घटिका प्रमाण दोनों समय अवश्य ही करना चाहिये और इस व्रतके भी पाँचों आतिचारोंको वर्जना चाहिये, जैसे कि—

मण दुप्पणिहाणे वय दुप्पणिहाणे काय  
दुप्पणिहाणे सामायियस्स अकरणयाय सामा-  
यियस्स अणवठ्ठियस्स अकरणयाए ॥ ५ ॥

भाषार्थः—सामायिक व्रतके भी पांच ही अतिचार हैं, जैसे कि—मनसे दुष्ट ध्यान धारण करना १ वचन दुष्ट उच्चारण करना २ और कायाको भी वशमें न करना ३ शक्ति हो-वे हुए सामायिक न करना ४ और सामायिकके कालको बिना ही पूर्ण किये पार लेना ५ ॥ यह पांच ही सामायिक व्रतके अतिचार हैं, सो इनका परित्याग करके शुद्ध सामायिक रूप नियम दोनों समय अर्थात् सन्ध्या समय और प्रातःकाल नियम-पूर्वक आसेवन करे और अतिचारोंको कभी भी आसेवन करे नहीं, क्योंकि अतिचाररूप दोष व्रतको कलंकित कर देते हैं। सो यही सामायिक रूप प्रथम शिक्षाव्रत है ॥

फिर द्वितीय शिक्षाव्रत ग्रहण करे, जैसे कि—

**देशावकाशिक ॥**

जो पष्ठम व्रतमें पृथादि दिशाओंका प्रमाण किया था उस प्रमाणसे नित्यम् प्रति स्वल्प वरते रहना उसीका ही नाम देश-

अशक्त व्रत है और इसी व्रतमें चतुर्दश नियमोंका धारण किया जाता है । अपितु जिस प्रकारसे नियम करे उसी प्रकारसे पालन करे किन्तु परिमाणकी भूमिकासे बाहर पांचासव सेवन का प्रत्याख्यान करे । अपितु इस व्रतके धारण करनेसे बहुत ही पापोंका प्रवाह बंध हो जाता है और इस व्रतका भी पांचो अतिचारोंसे रहित होकर पालन करे, जैसे कि—

आणवणप्पजग्गे पेसवणप्पजग्गे सदाणु-  
वाय रूवाणुवाय वहियापोग्गल पक्खेवे ॥

भाषार्थः—प्रमाणकी भूमिकासे बाहिरकी वस्तु आज्ञा करके मंगवाई हो १ तथा परिमाणसे बाहिर भेजी हो २ और शब्द करके अपनेको प्रगट कर दिया हो ३ वा रूप करके अपने आपको प्रसिद्ध कर दिया हो ४ अथवा किसी वस्तु पर पुद्गल क्षेप करके उस वस्तुका अन्य जीवोंको बोध करा दिया हो ५॥  
सो इन पांच ही अतिचारोंको परित्याग करके दशवा देशावकाशिक व्रत शुद्ध धारण करे । और फिर पर्व दिनोंमें तथा मासमें पट् पौषध करे क्योंकि पौषध व्रत अवश्य ही धारण करना चाहिये जिसके धारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा वा तप कर्म दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं ॥

## तृतीय पौषध शिक्षाव्रत विषय ॥

उपाश्रयमें वा पौषधशालामें तथा स्वच्छ स्थानमें अष्ट याम-  
पर्यन्त एक स्थानमें रहकर उपवास व्रत धारण करना उसका  
१० नाम पौषध व्रत है । अपितु पौषधोपवासमें अन्न, पाणी, स्वा-  
द्य, स्वाद्यम, इन चारों ही आहारका प्रत्याख्यान होता है, आर  
द्रव्यार्थ धारण करा जाता है । अपितु मणि स्वर्णादिका भी प्रत्या-  
ख्यान करना पड़ता है, शरीरके शृंगारका भी त्याग होता है, अपितु  
स्त्रियादि भी पास रखे नहीं जा सक्ते और सावय योगोंका भी  
निषेध होता है । इस प्रकारमें पौषधोपवास व्रत ग्रहण करा जाना  
है । प्रतिमासमें पक्ष पौषधोपवास व्रत तथा शक्ति प्रमाण अवसर  
ही धारण करने चाहिये । और पांचो अनिवारोंको भी त्यागना  
चाहिये—जैसेकि शय्या संस्कारका न प्रतिरोधन किया हो,  
यदि किया है तो इस प्रकारमें प्रतिरोधन किया है ।  
इसी प्रकार शय्या संस्कारका प्रमादित नहीं किया हो, यदि  
किया है तो इस प्रकारमें किया गया है न ! जैसे ही पूर्णपूरण  
का प्रत्यक्षमाण प्रतिरोधन न किया हो, यदि किया है  
तो इस प्रकारमें किया है न ! और यदि प्रमादित न किया हो  
तथा किया हो तो इस प्रकारमें प्रमादित किया है ।



सचित्त निक्खेवणया १ सचित्त पेहणिया २  
कालाश्कम्मे ३ परोवएसे ४ मच्छरियाए ५ ॥

भाषार्थः—न देनेकी बुद्धिसे निर्दोष वस्तुको सचित्त वस्तुपर रख दी हो १ वा निर्दोषको सचित्त वस्तु कारिके ढांप दिया हो २ और कालके अतिक्रम हो जानेसे विज्ञप्ति करि हो तथा वस्तुका समय ही व्यतीत हो गया होवे ही वस्तु मुनियोंको दे दी हो ३ और परको उपदेश दिया हो कि तुम ही आहारादि दे दो क्योंकि आप निर्दोष होने पर भी लाभ न ले सका ४ अथवा मत्सरतामे देना ५ ॥ इन पांचों ही आतिचारोंको त्याग करके चतुर्थ शिक्षाव्रत पालन करना चाहिये ॥

सो यह पांच अनुव्रत, तीन अनुगुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं द्वादश व्रत गृहस्थी धारण करे, इसका नाम देशचारित्र है. क्योंकि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र, तीन ही मुक्तिके मार्ग हैं । इन तीनोंको ही धारण करके जीव संसारमे पार

१ द्वादश व्रत इस स्थलमे वेदके सिद्धिर्जन मात्र ही लिखे हैं किन्तु पितृगृहस्थ भी उपानयन दत्तक मुत्र धात्री जल-शयनदि मुद्रादि देणों ५ दिने ॥

हो जाते हैं । आपेनु यथाशक्ति इनको धारण करके फिर रात्री-भोजनका भी परिहार करना चाहिये; इनमें अनेक दोषोंका समूह है । फिर श्रावक २१ गुण करके संयुक्त हो जावे, वे गुण उक्त नियमोंको विशेष लाभदायक हैं और सर्व प्रकारसे उपादेय हैं, सत् पथके दर्शक हैं, अनेक कुगतियोंके निरोध करनेवाले हैं, इनके आसेवनसे आत्मा शान्तिके मंदिरमें प्रवेश कर जाता है ॥

अथ एकविंशति श्रावक गुण विषय ॥

धम्मरयणस्स जुग्गो अक्खुदो रूववं पगइसोमो ॥  
लोअपिअो अक्कूरो अत्तहो सुदक्खिणो ॥ १ ॥  
लज्जाह्वो दयाह्वो मज्झहो सोमदिट्ठो गुणरागी ॥  
सक्कह सपक्खजुत्तो सुदीहदंसी विसेसएण ॥ २ ॥  
वह्माणुग्गो विणियो कयएणओ परहिचत्थकारोय ॥  
तहचेव लद्धलक्खो इगवीस गुणो हवइ सट्ठो ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो जीव धर्मके योग्य है वह २१ गुण अवश्य ही धारण करे क्योंकि गुणोंके धारणके ही प्रभावसे गृहस्थ सु-





३ पगड मोमो—सौम्य प्रकृति युक्त होना चाहिये अर्थात् आग्नि स्वभाव क्षुद्र जनोंके किये हुए उपद्रवोंको माध्यस्थताके साथ सहन करने चाहिये, और मस्तकोपरि किसी कालमें भी अशान्ति लक्षण न होने चाहिये ॥

४ लोअपिओ—लोकप्रिय होना चाहिये अर्थात् परोपकारादि द्वारा लोगोंमें प्रिय हो जाता है। परोपकारी जीव ऊच्च कोटि गणन किया जाता है। परोपकारियोंके सब ही जीव हि-तैषी होते हैं और उसकी रक्षामें उद्यत रहते हैं। परोपकारी जीव सर्व प्रकारसे धर्मोन्नति करनेमें भी समर्थ हो जाते हैं और अपने नामको अमर कर देते हैं। इस लिये लोगमें प्रिय कार्य करनेवाला लोगप्रिय बन जाता है ॥

५ अकूरो—क्रूरतासे रहित होवे—अर्थात् निर्दयतासे रहित होवे। निर्दयता सत्य धर्मको इस प्रकारसे उखाड़ डालती है जैसे तीक्ष्ण परशुद्वारा लोग वृक्षोंको उत्पाटन करते हैं। निर्दयी पुरुष कभी भी ऊच्च कक्षाओंके योग्य नहीं हो सक्ता। क्रूर चित्त-वाला पुरुष सदैव काल क्षुद्र वृत्तियोंमें ही लगा रहता है ॥

६ असद्धो—अश्रद्धावाला न होवे—अर्थात् सम्यक् दर्शन युक्त ही जीव सम्यक् ज्ञानको धारण कर सक्ता है। अपितु इत-

ना ही नहीं किन्तु श्रद्धायुक्त जीव मनोवांछित पदार्थोंको भी प्राप्त कर लेता है और देव गुरु धर्मका आराधिक बन जाता है ॥

७ मृदन्निखणो—मृदस्त होवे—अर्थात् बुद्धिशील ही जीव मत्प असत्पके निर्णयमें समर्थ होता है और पदार्थोंका पूर्ण ज्ञान हो जाता है, अपितु बुद्धिसंपन्न ही जीव मिथ्यात्वके बंधनसे भी मुक्त हो जाता है । बुद्धिद्वारा अनेक वस्तुओंके स्वरूपको ज्ञान करके अनेक जीवोंको धर्म पथमें स्थापन करनेमें नमर्थ हो जाता है, अपितु अपनी प्रतिभा द्वारा यशको भी प्राप्त होता है ॥

८ लज्जालूओ—लज्जायुक्त होना—वृद्धोंकी वा माता पिता गुरु आदिकी लज्जा करना, उनके सम्मुख उपहास्य युक्त वचन न बोलने चाहिये तथा उनके सम्मुख मदैव काल विनयमें ही रहना चाहिये तथा पाप कर्म बरते समय लज्जायुक्त होना चाहिये अर्थात् अपने कुल धर्मको विचारके पाप कर्म न करने चाहिये ॥

९ दयालू—दयायुक्त होना—अर्थात् वरणायुक्त होना, जो जीव दुःखोंमें पीड़ित है और मदैवकाल हेतु ही आहु व्यतीत करने से वा अनाथ है वा गौरी है वनेदि दया भाव प्रकट



क्यों भी भय नहीं होता, सत्यवादी सर्व पदार्थोंका ज्ञाता होता है, सत्यवादी ही जीव धर्मके अंगोंको पालन कर सकता है, सत्यवादीकी ही सब ही लोग प्रतिष्ठा करते हैं और सत्य व्रत सर्वजीवोंकी रक्षा करता है, इस लिये सत्यवादी बनना चाहिये ॥

१४ सपक्खजुत्तो—और सच्चेका ही पक्ष करना क्योंकि न्याय धर्म इसीका ही नाम है कि जो सत्ययुक्त हैं, उनके ही पक्षमें रहना, सत्य और न्यायके साथ वस्तुओंका निर्णय करना, कभी भी असत्यमें वा अन्याय मार्गमें गमन न करना, न्याय बुद्धि सदैव काल रखनी ॥

१५ सुदीहदंसी—दीर्घदर्शी होना अर्थात् जो कार्य करने उनके फलाफलको प्रथम ही विचार लेना चाहिये क्योंकि बहुतसे कार्य प्रारंभमें प्रिय लगते हैं पश्चात् उनका फल निकृष्ट होता है, जैसे विवाहादिमें वेश्यानृत प्रारंभमें प्रिय पीछे धन यश वीर्य सबीका नाश करनेवाला होता है क्योंकि जिन बालकोंको उस नृतमें वेश्याकी लग्न लग जाती है वे शायद फिर किसीके भी वशमें नहीं रहते । इसी प्रकार अन्य कार्योंको भी संयोजन कर लेना चाहिये ॥

१६ विसेसणू—विशेषज्ञ होना अर्थात् ज्ञानको विशेष बारीकी जानना । फिर पदार्थोंके फलाफलको विचारना उसमें फिर



१९ कण्णूओ-कृतज्ञ होना अर्थात् किये हुए परोपकार-का मानना क्योंकि कृतज्ञताके कारणसे सभी गुण जीवको प्राप्त हो जाते हैं जैसेकि-श्री स्थानांग सूत्रके चतुर्थ स्थानके चतुर्थ उद्देशमें लिखा है कि चतुर् कारणोंसे जीव स्वगुणोंका नाश कर बैठते हैं और चतुर् ही कारणोंसे स्वगुण दीप्त हो जाते हैं, यथा क्रोध करनेसे १ ईर्ष्या करनेसे २ मिथ्यात्वमें प्रवेश करनेसे ३ और कृतघ्नता करनेसे ४ ॥ अपितु चार ही कारणोंसे गुण दीप्त होते हैं, जैसेकि पुनः २ ज्ञानके अभ्यास करनेसे १ और गुर्वादिके छंदे व्रतनेसे २ तथा गुर्वादिका आनंदपूर्वक कार्य करनेसे ३ और कृतज्ञ होनेसे ४ अर्थात् कृतज्ञता करनेसे सर्व प्रकारके मुख उपलब्ध होते हैं, इस लिये कृतज्ञ अवश्य ही होना चाहिये ॥

२० परित्यक्कारीय-और सदैव काल ही परित्यक्कारी होना चाहिये अर्थात् परोपकारी होना चाहिये, क्योंकि परोपकारी जीव सब ही का हितैषी होते हैं, परोपकारी ही जीव धर्मशील हैं, सब करने हैं, परोपकारीने सर्व जीव हित करने हैं तथा परित्यक्कारी जीव उच्च भेषियों प्राप्त हो जाता है, इस लिये परोपकारी अवश्य ही आदरणीय है ॥







## संसार ज्ञावना ॥

संसार भावना उसका नाम है जो इस प्रकारसे विचार करता है कि यही आत्मा अनंतवार एक योनिमें जन्म मरण कर चुका है अपितु इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक २ जीवके साथ सर्व प्रकारसे सम्बन्ध भी हो चुके हैं, किन्तु शोक है फिर यह जीव धर्मके मार्गमें प्रवेश नहीं करता। अहो ! संसारकी कैसी विचित्रता है कि पुत्र मृत्यु होकर पिता बन जाता है और पिता मरकर पुत्र होता है। इस प्रकारसे भी परिवर्तन होनेपर इस जीवने सम्यग् ज्ञानादिको न सेवन किया जिसके द्वारा इसकी मुक्ति हो जाती ॥

## एकत्व ज्ञावना ॥

फिर इस प्रकारसे अनुप्रेक्षण करे कि एकले ही जीव मृत्यु होते हैं और प्रत्येक २ ही जन्म धारण करते हैं किन्तु कोई भी किसीके साथ आता नहीं और न कोई किसीके साथ ही जाता है। केवल धर्म ही अपना है जो सदैवकाल जीवके साथ ही रहता है अथवा मेरा निज आत्मा ही है इसके भिन्न न कोई मेरा है और न मैं किसीका हूं। यदि मैं किसी प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित होता हूं तो मेरे सम्बन्धी उससे मुझे मुक्त नहीं

न सक्ते और नाहीं मैं उनको किसी प्रकारसे दुःखोंसे विमुक्त करनेमें समर्थ हूं। प्रत्येक २ प्राणी अपने २ किये हुए कर्मोंके फलको अनुभव करते हैं इसका ही नाम एकत्व भावना है ॥

### अन्यत्व भावना ॥

हे आत्मन् ! तू और शरीर अन्य २ है, यह शरीर पुद्गलका संचय है अपितु चेतन स्वरूप है। तू अमूर्त्तिमान सर्व ज्ञानमय द्रव्य है। यह शरीर मूर्त्तिमान शून्यरूप द्रव्य है और तू अक्षय अव्ययरूप है, किन्तु यह शरीर विनाशरूप धर्मवाला है फिर तू क्यों इसमें मूर्च्छित हो रहा है ? क्योंकि तू और शरीर भिन्न २ द्रव्य हैं ॥ फिर तू इन कर्मोंके बशीभूत होता हुआ क्यों दुःखोंको सहन कर रहा है ? इस शरीरसे भिन्न होनेका उपाय कर और अपनेसे सर्व पुद्गल द्रव्यको भिन्न मान फिर उससे विमुक्त हो क्योंकि तू अन्य हैं तेरेसे भिन्न पदार्थ अन्य हैं ॥

### अशुचि ज्ञानना ॥

फिर ऐसे विचारे कि यह जीव तो सदा ही पवित्र है किन्तु यह शरीर मलीनताका घर है। नव द्वार इसके सदा ही मलीन रहते हैं अपितु इतना ही नहीं किन्तु जो पवित्र पदार्थ इस गंघामय शरीरका स्पर्श भी कर लेते हैं वह भी अपनी पवित्रता खो

बैठते हैं, क्योंकि इसके अभ्यन्तर मलमूत्र, रुधिर राग, सर्व गंधमय पदार्थ हैं फिर मृत्युके पीछे इसका कोई भी अवयव काममें नहीं आता, परंतु देखनेको भी चित्त नहीं करता । फिर यह शरीर किसी प्रकारसे भी पवित्रताको धारण नहीं कर सकता, केवल एक धर्म ही सारभूत है अन्य इस शरीरमें कोई भी पदार्थ सारभूत नहीं है क्योंकि इसका अशुचि धर्म ही है । इस लिये हे जीव ! इस शरीरमें मूर्च्छित मत हो, इससे पृथक् हो जिस करके तुमको मोक्षकी प्राप्ति होवे ॥

### आस्रव भावना ॥

राग द्वेष मिथ्यात्व अव्रत कषाययोग मोह इनके ही द्वारे शुभाशुभ कर्म आते हैं उसका ही नाम आस्रव है और आर्त-ध्यान, राद्विध्यान इनके द्वारा जीव अशुभ कर्मोंका संचय करते हैं तथा हिंसा, असत्य, अदत्त, अव्रह्मचर्य, परिग्रह, यह पांच ही कर्म आनेके मार्ग हैं इनसे प्राणी गुरुताको प्राप्त हो रहे हैं और नाना प्रकारकी गतियोंमें सतत पर्यटन कर रहे हैं । आप ही कर्म करते हैं आप ही उनके फलोंको भोग लेते हैं । शुभ भावोंसे शुभ कर्म एकत्र करते हैं अशुभ भावोंसे अशुभ, किन्तु अशुभ कर्मोंका फल जीवोंको दुःखरूप भोगना पड़ता है, शुभ कर्मोंका सुखरूप फल होता है । इस प्रकारसे विचार करना उसका ही नाम आस्रव भावना है ॥

## संवर भावना ॥

जो जो कर्म आनेके मार्ग हैं उनको निरोध करना वे संवर भावना है तथा क्रोधको क्षमासे वशमें करना, मानको मर्दव वा हृदनामे. मायाको ऋजु भावोंसे, लोभको संतोषसे, इसी प्रकार जिन मार्गोंसे कर्म आते हैं उन मार्गोंका ही निरोध करना सो ही संवर भावना है जैसे कि अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपविग्रह, सम्यक्त्व, व्रत, अयोग, सामिति, शुक्ति, चारित्र, मन वचन कायाको वशमें करना वे ही संवर भावना है ॥

## निर्जरा भावना ॥

निर्जरा उसका नाम है जिसके बरनेमे वषोंके दोहरा ही नाम हो जाये तब ही आत्मा मोक्षरूप होता है । यह निर्जरा द्वादश प्रकारके तपसे होती है उसीका ही नाम सदास निर्जरा है, नती तो अशाम निर्जरा जीव सम्य ९ बरने है बिना अक्षय निर्जरासे संसारदी क्षीणता नती हो । सदास निर्जरा जीवने शुक्ति होती है अर्थात् शानके साथ समस्त चारित्रिक आचरण बरना उचित है शान जीव दमोंके बिना ही तपसु हो । और नती निर्जरा जीवने चारित्रिक तपसे हो । जो नती जीवने पूर्व कथित निर्जरा ही है जो शान बरना प्रत्यक्ष है ।



गया तो देश आर्यका मिलना अतीव कठिन है क्योंकि बहुतसे देश ऐसे भी पड़े हैं जिन्होंने कभी श्रुत चारित्र रूप धर्मका नाम ही नहीं सुना । यदि आर्य देश भी मिल गया तो आर्य कुलका मिलना महान् कठिन है क्योंकि आर्य देशमें भी बहुतसे ऐसे कुल हैं जिनमें पशुवध होता है और मांसादि भक्षण करते हैं । यदि आर्य कुल भी मिल गया तो दीर्घायुका मिलना परम दुष्कर है क्योंकि स्वल्प आयुमें धार्मिक कार्य क्या हो सकते हैं ? भला यदि दीर्घायुकी प्राप्ति हो गई तो पांचिन्द्रिय पूर्ण मिलनी अतीव ही कठिन है क्योंकि चक्षुरादिके रहित होनेपर दयाका पूर्ण फल जीव प्राप्त नहीं कर सके । भला यदि इन्द्रिय पूर्ण हों तो शरीरका नीरोग होना बड़ा ही कठिन है क्योंकि व्याधियुक्त जीव धर्मकी बात ही नहीं सुन सक्ता । सो यदि शरीर भी नीरोग मिल गया तो सुपुरुषोंका संग होना महान् ही दुष्कर है क्योंकि कुसंग होना स्वाभाविक बात है । भला यदि सुजनोका संग भी मिल गया तो सूत्रका श्रवण करना महान् कठिन है । भला सूत्रको श्रवण भी कर लिया तो उसके उपरि श्रद्धानका होना अतीव दुष्कर है । भला यदि श्रद्धान भी ठीक प्राप्त हो गया तो धर्मका पालन करना परम कठिन है क्योंकि धर्मकी क्रिया आशावान् पुरुषोंसे नहीं पल सकती किन्तु धर्म अनार्योका नाय



संयोग मिल जाते हैं परंतु बोधबीज ही प्राप्त होना कठिन है । इस लिये बोधबीजको अवश्य ही प्राप्त करना चाहिये । इस प्रकारसे जो आत्मामें भाव धारण करता है उसीका नाम बोधबीज भावना है । सो यह द्वादश भावनायें आत्माको पवित्र करनेवाली हैं, कर्ममलके धोनेके लिये महान् पवित्र वारिरूप हैं, संसार रूपी समुद्रमें पोतके तुल्य हैं, द्वादश व्रतोंको निष्कलंक करनेवाली हैं और आतिचारोंको दूर करनेवाली हैं, सत्यरूपके बतलानेवाली हैं, मुक्तिमार्गके लिये निश्रेणि रूप है । इस लिये प्राणीमात्रको इनके आश्रयभूत अवश्य ही होना चाहिये । फिर निम्नलिखित चार प्रकारकी भावनायें द्वारा लोगोंसे वर्तव करना चाहिये ॥

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ्यानि च  
सत्त्वगुणाधिक क्लिश्यमानाऽविनयेषु । तत्त्वार्थसूत्र अ० ८ सू० ११ ॥

इसका यह अर्थ है कि मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ्य, यह चार ही भावनायें अनुक्रमतासे इस प्रकारसे करनी चाहियें जैसे कि सर्व जीवोंके साथ मैत्रीभाव, एकोन्द्रियसे पंचिन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीवके साथ द्वेष भाव नहीं करना और यह-





जीवोंको सुमार्गमें लगानेवाली हैं और सत्यपथकी दर्शक हैं । इनका अभ्यास प्राणी मात्रको करना चाहिये क्योंकि यह संसार अनित्य है, परलोकमें अवश्य ही गमन करना है, माता पिता भार्यादि सब ही रुदन करते हुए रह जाते हैं और फिर उसका अग्नि संस्कार कर देते हैं, और फिर जो कुछ उसका द्रव्य होता है वे सब लोग उसका विभाग कर लेते हैं किन्तु उमने जो कर्म किये थे वे उन्ही कर्मोंको लेकर परलोकको पहुँच जाना है और उन्ही कर्मोंके अनुसार दुःख सुख रूप फलको भोगना है, इस लिये जब मनुष्य भव प्राप्त हो गया है फिर जानि आर्य, कुल आर्य, नेत्र आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य, शिल्प आर्य जब इनके गुण आर्थनाके भी प्राप्त हो गये फिर ज्ञानार्थ, दर्शनार्थ, चारित्र्यार्थ, अवश्य ही बनना चाहिये । तत्त्वमार्ग के पूर्ण वेत्ता होकर परोपकारियोंके अग्रणी बनना चाहिये और मन्य मार्गके द्वारा सत्य पदार्थोंका पूर्ण प्रकाश करना चाहिये । फिर सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र्यसे स्वयं-स्वको विनृपित करके मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होवे । किन्तु सत्त्वपद जो नादि अनंत इत्त पदवाला है उसको प्राप्त होकर उच्चर अमर भिन्न इत्त ऐसे बनना चाहिये । अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतस्वस्वकीर्ति इत्त होकर

जीव मोक्षमें विराजमान हो जाता है, संसारी बंधनोमें सर्वथा ही छूटकर जन्ममरणसे रहित हो जाता है और सदा ही सुख-रूपमें निवास करता है अर्थात् उस आत्माको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र्यके प्रभावसे अक्षय सुखकी प्राप्ति हो जाती है। आशा है भव्य जन उक्त तीनों रत्नोंको ग्रहण करके इस प्रवाहरूप अनादि अनंत संसारचक्रसे विमुक्त होकर मोक्ष-रूपी लक्ष्मीके साधक बनेंगे और अन्य जीवोंपर परोपकार करके सत्य पथमें स्थापन करेंगे जिस करके उनकी आत्माको सर्वथा शान्तिकी प्राप्ति होवेगी और जो त्रिपदी महामंत्र है जैसेकि उत्पत्ति, नाश, ध्रुव, सो उत्पत्ति नाशसे रहित होकर ध्रुव व्यवस्था जो निज स्वरूप है उसको ही प्राप्त होवेंगे क्योंकि उत्पत्ति नाश यह विभाविक पर्याय हैं किन्तु त्रिकालमें सत्स्वरूपमें रहना अर्थात् निज गुणमें रहना यह स्वाभाविक अर्थात् निज-गुण है। सो कर्ममलसे रहित होकर शुद्धरूप निज गुणमें सर्वज्ञतामें वा सर्वदर्शितामें जीव उक्त तीनों रत्नों करके विराजमान हो जाते हैं। मैं आकांक्षा करता हूं कि भव्य जीव श्री अर्हन्द्देवके प्रतिपादन किये हुए तत्त्वोंद्वारा अपना कल्याण अवश्य ही करेंगे॥

इति श्री अनेकान्त सिद्धान्त दर्पणस्य चतुर्थ सगे समाप्त ॥



यह पुस्तक मिलनेके पत्ते ॥

---

यह पुस्तक निम्न लिखित पत्तेसे विक्रित मिलती है ॥

श्री जैन सभा-पञ्जाब

अमृतसर.

---

बाबु परमानंद प्लीडर; बी. ए.

कसूर ( जिला-लाहौर )

---





जैन सिद्धान्त ॥

(अनेकान्त सिद्धान्त दर्पण)

लेखक

श्री जैन मुनि उपाध्याय आत्मारामजी.

प्रकाशक

## શ્રી જૈન સમા-પજ્ઞાવ

वी तरुणे

बाबु परमानंद प्लीडर, बी. ए.

सामुद्र ( जिना-राहैर )

४५८. ३१

57 605

वीर निर्दाल चर १८८९, २० र २१ १९८७

લાલનદાસાણે પાસણાળી ગરદેજ પાળા તુલ્ય પી. રાતરિલન  
 કિન્તીને પેગમે રાત્ર ગાજતમર દરિયાને લાગ

मुख्य र. ८-६-८.